स्वदेशी पत्रिका

वर्ष–22, अंक–12, मार्गशीर्ष–पौष 2071, दिसम्बर 2014

संपादक
विक्रम उपाध्याय

कार्यालय
धर्मक्षेत्र, सेक्टर–8, बाबू गेनू मार्ग
रामकृष्णपुरम्, नयी
दिल्ली–110022
से प्रकाशित
दूरभाष : 011–26184595
स्वदेशी जागरण समिति की ओर से ईश्वर दास महाजन द्वारा कॉम्पीटेंट बाइन्डर्स (प्रिंटिंग यूनिट), नवीन शाहदरा, दिल्ली–32 से मुद्रित।

आवरण कथा – पृष्ठ–6

एक बार अमरीका के साथ खाद्य सुरक्षा के मसले पर समझौता हो जाने के बाद व्यापार सुविधा समझौता होना निश्चित हो गया है। गौरतलब है कि यह व्यापार सुविधा समझौता वास्तव में आयात सुविधा समझौता है। इस समझौते के अनुसार विकसित देशों से आने वाले साजोसमान के लिए तमाम प्रकार की सुविधाएं जुटानी होंगी।

कवर पेज

अ नु क्र म

आवरण कथा :
बाली से बेहतर परंतु जीत तो नहीं
– डॉ. अश्विनी महाजन /6

जी–20
जी–20 बैठक में हुई जानी पहचानी अनदेखी
– देविन्दर शर्मा /8

पर्यावरण
बढ़ते प्रदूषण से घट रही है पैदावार
– शशांक द्विवेदी /10

सामयिकी
बढ़ रही है देश में बाल मृत्यु दर
– मुकुल श्रीवास्तव /12

बहस
संस्कृति विरोधी मानस
– बलवीर पुंज /14

संस्कृति
विज्ञान में संस्कृत भाषा का योगदान
– मनोज 'भारत' /16

अभिमत
नदियों को जोड़ना नहीं है समाधान
– अरुण तिवारी /18

अर्थतंत्र
देश में स्वर्ण सदुपयोग अभियान की है जरूरत
– जयंतीलाल भंडारी /20

अस्तित्व
भारत के रूख पर अमरीका की मुहर
– प्रमोद भार्गव /22

इतिहास–वर्तमान
दुनिया को भारत की देन
– निरंकार सिंह /27

विचार–विमर्श
मत कीजिए डिवाइड एण्ड रूल
– डॉ. भरत झुनझुनवाला /31

विश्लेषण
अध्यात्म के बिना विज्ञान है अधूरा
– वीरेन्द्र काजवे /34

दृष्टिकोण
परमाणु समझौते से भारत को क्या हासिल हुआ है?
– ब्रह्मा चेलानी /36

पाठकनामा/4, समाचार परिक्रमा/24,

पाठकनामा

किसानों की पुकार अब तो सुने सरकार

देश में विकास की बात हो रही है, मेक इन इंडिया की बात हो रही है, भारत को मजबूत राष्ट्र बनाने की बात हो रही है। लेकिन विदर्भ के किसानों के साथ–साथ देश के किसानों की बात अभी भी नहीं सुनी जा रही है। आज भी किसान आत्महत्या कर रहे हैं। देखा जाए तो वर्ष 1990 के बाद से यह स्थिति उत्पन्न हुई। इसका कारण मानसून की विफलता, सूखा, बीजों की कीमतों का बढ़ना, ऋण का बोझ, बैंकों, बिचौलियों और अनेक समस्याओं के चक्कर में फंस कर किसान आत्महत्याएं कर रहे हैं। आज भी महाराष्ट्र के विदर्भ क्षेत्र में किसान आत्महत्याएं कर रहे हैं। कुछ लोग इसका कारण सूखा बता रहे है तो कुछ लोग विदर्भ में डैम और तालाबों का कार्य पिछले 10 साल से पूरा न होने का। कारण जो भी हो। क्या महाराष्ट्र और केन्द्र सरकार का दायित्व नहीं बनता कि वो अपने किसानों के बारे में सोचें। जो किसान अपना परिश्रम करके देश के लिए अन्न उगाता है वही किसान आत्महत्या करें तो यह देश के लिए एक शर्मनाक बात होगी। आज केन्द्र सरकार को सबसे पहले किसानों की सुध लेना आवश्यक है। अगर अभी भी समय रहते इस पर ध्यान नहीं दिया गया तो एक दिन देश के किसानों की दुर्दशा और काफी खराब हो जाएगी।

– मनोज कुमार, विश्वास नगर, शाहदरा

बुजुर्गों को दे सम्मान

देश युवा से भरा हुआ है, युवा ही देश की पहचान है, युवा शक्ति ही देश को काफी आगे ले जाएगी। एक तरफ से गर्व की बात है परन्तु हमें यह भी याद रखना चाहिए युवाओं के जन्मदाता बुजुर्गों ही थे। आज बहुत से युवाओं वर्ग ने अपने माता–पिता को अनाथालय या अपने नौकरों के भरोसे छोड़ दिया है जो एक प्रकार से गलत है। क्या हम दुनिया की चकाचौंध मैं इतने पागल हो गए है कि हमें अपने बुजुर्गों की सेवा करने का मौका तक नही है। आए दिन अखबारों में खबर आती है कि नौकर ने बुजुर्ग दम्पत्ति को मार दिया या एक बेटे ने अपने माँ–बाप का सड़क पर छोड़ दिया। क्या यही हमारे संस्कार है, क्या यही हमारी शिक्षा है। जरूरत है आज लोगों को अपने मन में झाँक कर देखने की तभी हम अपने बुजुर्गों के बारे में सोचेंगे। याद रखना चाहिए एक दिन हम भी बुजुर्ग होंगे।

– विरेन्द्र सिंह, करतार नगर, गली नं. 12, दिल्ली

आवश्यक नहीं कि इस अंक के भीतर प्रस्तुत लेखकों के विचार स्वदेशी पत्रिका के संपादक मंडल के विचारों से मेल खाते हों। पाठकों की जानकारी के लिए उन्हें यहां प्रस्तुत किया जा रहा है।

संपादकीय कार्यालय

''धर्मक्षेत्र'' शिव शक्ति मन्दिर, सैक्टर–8, रामकृष्णपुरम्, नयी दिल्ली–110022

दूरभाष : 011–26184595 • ई–मेल : swadeshipatrika@rediffmail.com

अगर आप घर बैठे स्वदेशी पत्रिका चाहते हैं तो डिमांड ड्राफ्ट, मनीऑर्डर अथवा चेक द्वारा शुल्क *'स्वदेशी पत्रिका'* दिल्ली के नाम भेजने का कष्ट करें।

वार्षिक सदस्यता शुल्क : 15

आजीवन सदस्यता शुल्क:15,00 रुपए

यदि शुल्क भेजने के उपरांत भी आपको पत्रिका समय पर उपलब्ध नहीं हो पा रही है तो तुरंत पत्रिका कार्यालय को सूचित क र ।

या आप सीधे बैंक ऑफ इंडिया, खाता नं. 602510110002740

IFSC : BKID 0006025 (Ramakrishnapuram)

उन्होंने कहा

किसी में भी इतनी शक्ति नहीं है कि वह भारत को नष्ट कर सके। देश में किसी भै आंतकी हमले के खिलाफ समुचित जवाब दिया जाएगा।

– राजनाथ सिंह

जम्मू–कश्मीर में सुरक्षा बलों की हत्या बेहद दर्दनाक है। इस घटना से जम्मू–कश्मीर में आम लोगों की सुरक्षा को लेकर सवाल खड़े होते है। इससे किसी तरह का समझौता ठीक नहीं।

– सलमान खुर्शीद

राज्यों के विकास के बिना देश का विकास होना असंभव है।

– नरेन्द्र मोदी

सुख का आधार स्वावलम्बन है इसके बिना किसी समृद्ध राष्ट्र की परिकल्पना नहीं की जा सकती।

– प्रो. गिरीश चन्द्र त्रिपाठी

भारतीय उद्योग जगत की यह धारणा गलत है कि आरबीआई को विकास की चिंता नहीं है। हम किसी एक तिमाही की नहीं, बल्कि वर्षों तक चलने वाले टिकाऊ विकास की बात कर रहे हैं।

– रघुराम राजन

देश की समृद्ध संस्कृति, आचार विचार, जीवन मूल्य और दर्शन हमारे ग्रंथों में समाहित हैं, जिन्हें हमारे ऋषि–महर्षियों–मनीषियों ने संस्कृत भाषा में संकलित कर रखा है।

– बलवीर पुंज

मेरी जिंदगी का मकसद हर बच्चे को आजाद कराना।

– नोबेल पुरस्कार कैलाश सत्यार्थी,

संपादकीय

आर्थिक सुधारों में राष्ट्रीय सोच की दरकार

नरेन्द्र मोदी की सरकार को कार्यभार संभाले 6 महीने से ज्यादा हो चुके हैं। जनधन योजना, स्वच्छ भारत अभियान समेत कई योजनाओं की घोषणा और उनका क्रियान्वयन भी शुरू हो चुका है। कच्चे तेल की अंतर्राष्ट्रीय कीमतों में आई गिरावट हो अथवा सरकार द्वारा अपनाये गये उपाय हों, मंहगाई भी अब थमने लगी है। लेकिन मैन्यूफैक्चरिंग की ग्रोथ जो 2007–08 में 15 प्रतिशत से अधिक थी, पिछले कुछ सालों में घटती हुई, जो 2013–14 में –0.7 प्रतिशत तक पहुंच गई थी, उनमें पिछले 6 महीनों में भी कोई विशेष सुधार दिखाई नहीं दे रहा है। विडंबना यह है कि पिछले 25 सालों में प्रति व्यक्ति आय में भारी वृद्धि हुई और पिछली दो पंचवर्षीय योजनाओं में तो जीडीपी की ग्रोथ 8 फीसदी वार्षिक रही, तो भी गरीबों की हालत में अपेक्षित सुधार नहीं हो रहा। हालांकि योजना आयोग द्वारा दी गई गरीबी की रेखा की परिभाषा हमेशा ही विवादित रही है, फिर भी वर्ष 2009–10 में भारत की 30 प्रतिशत आबादी गरीबी की रेखा से नीचे आंकी गई। जानकार लोगों का कहना है कि अगर गरीबी ठीक प्रकार से परिभाषित की जाए तो भारत की आधी आबादी से भी ज्यादा गरीब कही जाएगी।

हालात बदलने हों तो नीतिगत सुधार जरूरी है, इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता, लेकिन इस बात पर बहस जरूरी है कि वे सुधार क्या हों। दुर्भाग्य की बात तो यह है कि आर्थिक सुधार क्या हों, यह बात देशवासियों से पूछने की बजाए, हमेशा अमरीका, विश्व बैंक, आई.एम.एफ. एशियाई विकास बैंक ने जो बताया उसी पर देश को चला दिया गया। जॉन विलियमसन नाम के एक अर्थशास्त्री हुए हैं, जिन्होंने अमरीका और उसकी समर्थित संस्थाओं द्वारा नीतिगत सुझावों को वांशिगटन मतैक्य का नाम दिया। देखा जाए तो 1991 के बाद उदारीकरण के नाम पर जितने भी नीतिगत बदलाव आर्थिक सुधारों के नाम पर हुए, वे उसी तर्ज पर थे, चाहे वो आयातों के लिए देश को खोलने की बात हो या विदेशी कंपनियों के लिए लाल गलीचे बिछाने की कवायद, या फिर देश में पेटेंट कानून को बदलने का प्रयास, उन सभी से वाशिंगटन मतैक्य की बू आती है।

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भारत को व्यापार और व्यवसाय के लिए कोई बहुत अच्छा दर्जा कभी भी प्राप्त नही हुआ। ऐसा माना जाता है कि भारत व्यापार–व्यवसाय के लिए अच्छा गंतव्य नही है। विश्व बैंक की रैंकिंग के हिसाब से व्यापार–व्यवसाय सुविधा की दृष्टि से भारत 189 देशों की सूची में 142 पायदान पर है। नजदीक से देखने पर पता चलता है कि भारत व्यवसाय शुरू करने की सुविधा में 158वें और निर्माण अनुमति मिलने की सुविधा की दृष्टि से 184वें स्थान पर है। बिजली मिलने की सुविधा की दृष्टि से हमारा स्थान 137वां है और संपत्ति की रजिस्ट्री की सुविधा की दृष्टि से हम 121वें पायदान पर खड़े हैं। अंतर्राष्ट्रीय व्यापार की सुविधा की दृष्टि से हम 126वें और संविदा (कान्ट्रेक्ट) लागू करवाने की दृष्टि से तो हम 186वें स्थान पर है।

यदि व्यवसाय चलने में सुविधा ही नहीं है, तो हम देश का विकास कर भी कैसे सकते हैं। इसलिए देश के विकास में बड़ी बाधा निवेश के लिए संसाधनों की कमी नहीं है, बल्कि वास्तव में कमी निवेश के वातावरण में हैं। खेद का विषय यह है कि निवेश के वातावरण के बारे में चर्चा करते हुए भी केवल आयातों को खोलने और विविध क्षेत्रों में विदेशी पूंजी की सीमा बढ़ाने पर ही जोर देते है। साथ ही विदेशी निवेशकों को ज्यादा सुविधाएं मिलें, उसके लिए करों में छूट पर तो जोर होता ही है, विदेशियों द्वारा कर की चोरी, को भी माफ करने की कवायद जारी रहती है। यही नहीं जिन गलत तरीकों (जैसे ट्रांसफर प्राईसिंग) के माध्यम से करों की चोरी और विदेशी मुद्रा का गैर कानूनी रूप से अंतरण हो जाता है, उसे भी नजरअंदाज करने की वकालत होती है।

बजट हो, अंतर्राष्ट्रीय समझौतें हो, अथवा सरकारी घोषणायें, सभी में विदेशी व्यापार और विदेशी निवेश की बात ही होती है। गौरतलब है कि कर चोरी रोकने के 'गार' कानून पूर्व प्रभाव से लागू न हों, कारपोरेट को भूमि मिलने में सुविधा की दृष्टि से भूमि अधिग्रहण कानून बदला जाए, विदेशी निवेशकों के लिए रास्ते खोले जायें, विदेशों से आयात सुगम करने के लिए व्यापार सुविधा के लिए ढांचागत सुविधायें बढ़ाई जायें, इन्हीं मुद्दों पर सरकार का ध्यान केन्द्रित रहता है।

आज जरूरत इस बात की है कि बिजनेस जो में असुविधाएं देश की प्रतिस्पर्द्धा शक्ति को क्षीण कर रही हैं, जैसे बिजनेस शुरू करने की असुविधा, संपत्ति की रजिस्ट्री की असुविधा, निर्माण शुरू करने की असुविधा, बिजली मिलने की असुविधा, संविदा लागू करवाने की असुविधा इत्यादि को समाप्त करते हुए व्यवसाय को सुगम करने वाली सभी सुविधाओं से देश के उद्यमियों को लैस किया जाये।

कोई कारण नहीं कि भारत के लोग जो उद्यमशीलता, बुद्धि कौशल, मेहनत और समर्पण के लिए दुनिया में अपना लोहा मनवा चुके हैं, अपने ही देश की तरक्की में योगदान नहीं करेंगे। जरूरत है अपने देश के लोगों की क्षमताओं पर विश्वास रखते हुए, उनके लिए बिजनेस का सही वातावरण देने की, जो आजादी के 67 वर्ष भी नहीं मिल पाया। तब हमें विदेशियों को आओ 'मेक इन इंडिया' नहीं कहना पडेगा। नारा होगा, दुनिया वालों आओ, खरीदो 'मेड इन इंडिया'।

बाली से बेहतर परंतु जीत तो नहीं

एक बार अमरीका के साथ खाद्य सुरक्षा के मसले पर समझौता हो जाने के बाद व्यापार सुविधा समझौता होना निश्चित हो गया है। गौरतलब है कि यह व्यापार सुविधा समझौता वास्तव में आयात सुविधा समझौता है। इस समझौते के अनुसार विकसित देशों से आने वाले साजोसमान के लिए तमाम प्रकार की सुविधाएं जुटानी होंगी। इसका मतलब यह है कि अब बंदरगाहों पर प्रक्रियाओं को कम करना होगा, जिससे अमीर देशों से आने वाले आयात सुविधापूर्वक भारत में प्रवेश कर सकें।

■ डॉ. अश्विनी महाजन

नरेन्द्र मोदी द्वारा देश की सत्ता संभालने के बाद अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के बारे में काफी 'चहल कदमी' देखने को मिल रही है। सबसे पहले प्रधानमंत्री की नेपाल यात्रा, फिर कुछ और मुल्कों की यात्रा के बाद चीन यात्रा, जापान यात्रा, अमरीका यात्रा और अब आस्ट्रेलिया यात्रा, सभी से संकेत मिलते हैं कि वर्तमान सरकार अंतर्राष्ट्रीय संबंधों को लेकर काफी सक्रिय एवं संवेदनशील है। पाकिस्तान हो या चीन, लगभग सभी विवादित मसलों पर सरकार पिछले एक दशक के उदासीन रवैये से बाहर आती दिखाई देती है।

उसी तर्ज पर अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक संबंधों को लेकर भी सरकार काफी गंभीर दिखाई देती है, और अपने फैसले तेजी से ले रही है। हाल ही में अमरीका, चीन, जापान और कई अन्य देशों के साथ आर्थिक मोर्चे पर सहभागिता, सहयोग और संधियां काफी चर्चित रही है। उन्हीं में से विश्व व्यापार संगठन में खाद्य सुरक्षा के मुद्दे पर बाली समझौते के बारे में भारत और अमरीका ने मतभेद हाल ही में काफी चर्चा का विषय बने रहे। मुद्दा यह था कि पिछले साल बाली, इंडोनेशिया में विश्व व्यापार संगठन के 9वें मंत्रिस्तरीय सम्मेलन में सम्मेलन से पहले भारत की खाद्य सुरक्षा के मुद्दे पर अमरीका ने अपनी आपत्ति दर्ज कराई थी।

गौरतलब है कि विकसित देश अंतर्राष्ट्रीय वार्ताओं में यह दबाव बना रहे थे कि भारत द्वारा अपने खाद्य सुरक्षा कार्यक्रमों में सीमा से ज्यादा सब्सिडी दी जा रही है, जिसे वे विवाद में घसीट सकते हैं। देश में खाद्य सुरक्षा संबंधी बड़े–बड़े वादों के बाद भारत सरकार के पास कोई विकल्प नहीं था कि वे विकसित देशों की चुनौती को न माने, क्योंकि ऐसा करने पर देश में खाद्य सुरक्षा कानून और खाद्य सुरक्षा कार्यक्रम ही खटाई में पड़ जाता। ऐसे में बाली में काफी जद्दोजहद के बाद एक समझौता हुआ, जिसके अनुसार अब भारत द्वारा खाद्य सुरक्षा हेतु दी जाने वाली सब्सिडी को अब विकसित देशों द्वारा 4 वर्ष या स्थाई हल निकलने तक कोई चुनौती नहीं दी जा सकती। बाली सम्मेलन में अंतिम समझौते के रूप में जो फैसला हुआ था, उसके अनुसार – ''स्थायी हल निकलने तक, सदस्य देश कृषि समझौते की धारा 6.3 और 7.2बी के तहत खाद्य सुरक्षा के उद्देश्य से परंपरागत खाद्य फसलों के भंडारण संबंधी सहायता के विषय को विवाद निपटाऊ समिति के समक्ष चुनौती नहीं देंगे।''

लेकिन यह समझौता वास्तव में भ्रामक समझौता था, जिसके अनुसार 4 साल के बाद विकसित देश फिर से विवाद खड़ा कर सकते थे। इस समझौते के साथ–साथ जुड़ा हुआ था विदेशी व्यापार सुविधा समझौता, जिसके अनुसार शेष दुनिया से आने वाले सभी आयातों को तमाम प्रकार की सुविधाएं उपलब्ध कराने की बाध्यता है। नई सरकार आने के बाद यह समझते हुए कि व्यापार सुविधा संबंधी समझौता होने से विकसित देशों को काफी फायदा होने वाला है, और ऐसे में खाद्य सुरक्षा के संबंध में जो भ्रामक समझौता हुआ है, उसे ठीक करना संभव है; नई सरकार ने बाली में हुए पुराने समझौते से किनारा करते हुए, यह कहा कि व्यापार सुविधा समझौता तब तक नहीं होगा, जब तक भारत की चिंताओं का निराकरण नहीं होता।

कुछ दिन पहले अमरीका ने भारत की चिंताओं को मानते हुए बाली समझौते में बदलाव पर हामी भर दी, नए समझौते के अनुसार जब तक खाद्य सुरक्षा मुद्दे पर स्थाई सहमति नहीं बनती, तब तक दूसरे देश भारत के खाद्य सुरक्षा सब्सिडी के मुद्दें पर कोई विवाद खड़ा नहीं करेंगे। इस बात को भारत की जीत के रूप में रखा जा रहा है। गौरतलब है कि पिछली सरकार के वाणिज्य मंत्री आनंद शर्मा द्वारा भी जो समझौता किया गया था, उसे भी भारत की जीत के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा था, जो बाद में गलत सिद्ध हुआ।

बाली से बेहतर लेकिन....

यह सही है कि यह समझौता बाली समझौते से बेहतर है, लेकिन इसमें भी कई ऐसे मसलें हैं, जो भारत के लिए

हितकारी नहीं है। मसलन इस समझौते के बाद भी सब्सिडी का आकलन करने हेतु भारत की चिंता का कोई जिक्र नहीं है। गौरतलब है कि विश्व व्यापार संगठन के कृषि समझौते के अनुसार कृषि कीमतों का आधार 1986–88 रखा गया था, जो अभी भी बरकरार है। यानि यदि भारत सरकार 1986–88 की कीमतों से बढ़कर खरीदारी करती है, तो वह सारी राशि सब्सिडी मानी जाएगी। सब जानते हैं कि 1986–88 के बाद कृषि कीमतें कई गुणा बढ गई हैं। यदि भारत सरकार आज 1400 रूपए प्रति क्विंटल के दर से गेहूं खरीदती है तो उस पर सब्सिडी की राशि 1000 रूपए से ज्याद माना जाएगी, जो कि नितांत हास्यास्पद है।

बाली समझौते के अनुसार (जो अभी भी लागू रहेगा), पारदर्शिता का प्रावधान रखा गया है, जिसके अनुसार भारत सहित सभी विकासशील देशों को अपनी सार्वजनिक भंडारण पर सब्सिडी के बारे में तमाम सब्सिडी के बारे में सम्पूर्ण जानकारी डब्ल्यू.टी.ओ. को देनी होगी और डब्ल्यू.टी.ओ. की कृषि कमेटी उस जानकारी का मुआयना करेगी। इस प्रावधान का मतलब यह था कि, इस दौरान भारत को हर वर्ष डब्ल्यू.टी.ओ. के समक्ष अपने समस्त खाद्य सुरक्षा खर्च की मात्रा, संरचना और उसके लिए एजेंसियों का ब्यौरा देना होगा और यह स्वीकार भी करना होगा कि वे नियमानुसार सब्सिडी की सीमा से ज्यादा खर्च कर रहे हैं। यही नहीं अन्य सदस्य देश भारत के कार्यक्रमों का निरीक्षण कर सकेंगे (यानि गलती पाए जाने पर उसे विवाद में घसीटा जा सकेगा)। देश के अंदरूनी मामलों में इस प्रकार की विदेशी नजर और हस्तक्षेप संप्रभुता के क्षरण का द्योतक है।

एक बार अमरीका के साथ खाद्य सुरक्षा के मसले पर समझौता हो जाने के बाद व्यापार सुविधा समझौता होना निश्चित हो गया है। गौरतलब है कि यह व्यापार सुविधा समझौता वास्तव में आयात सुविधा समझौता है। इस समझौते के अनुसार विकसित देशों से आने वाले साजोसमान के लिए तमाम प्रकार की सुविधाएं जुटानी होंगी। इसका मतलब यह है कि अब बंदरगाहों पर प्रक्रियाओं को कम करना होगा, जिससे अमीर देशों से आने वाले आयात सुविधापूर्वक भारत में प्रवेश कर सकें। गौरतलब है कि भारत में आज

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार घाटा जीडीपी के 10 प्रतिशत से ज्यादा पहुंच चुका है, जिसके चलते हमें भुगतान संकट से जूझना पड़ रहा है और रूपया काफी कमजोर हो चुका है। अमीर मुल्कों से आने वाले आयातों को तमाम सुविधायें देने से भारत में आयातों की बाढ़ आ सकती है, जिसके कारण भुगतान संकट और ज्यादा गहरा सकता है। यही नहीं इन सुविधाओं को जुटाने में भारी खर्च भी होगा, जिसका खामियाजा शिक्षा और स्वास्थ्य जैसी जरूरी मदों को उठाना पड़ेगा।

नहीं लागू हो सकेगा कोई नया खाद्य सुरक्षा कार्यक्रम

बाली समझौते (जो अभी भी लागू है) के अनुसार, समझौते की तिथि तक खाद्य सुरक्षा उद्देश्य से जो सार्वजनिक भंडारण कार्यक्रम चल रहे हैं उनके अतिरिक्त कोई कार्यक्रम जिनकी अधिसूचना नहीं हुई है, अब लागू नहीं पायेंगे। यही नहीं इस समझौते में खाद्य सुरक्षा के लिए परंपरागत खाद्यान्नों को ही शामिल किया गया है। लेकिन यदि भविष्य में खान–पान की आदतें बदलती हैं, तो नए प्रकार के खाद्य पदार्थों को उस खाद्य सुरक्षा के प्रावधानों में शामिल नहीं किया जा सकेगा। यही नहीं यह समझौता इस प्रकार से बना है कि यदि अनजाने में भी सब्सिडी प्राप्त खाद्यान्न निर्यात बाजार में चले जाते हैं, तो भी उसको विवादित माना जाएगा।

यानि कह सकते हैं कि वर्तमान सरकार द्वारा किया गया समझौता बाली समझौते से थोड़ा बेहतर है, लेकिन बाली समझौते के नुकसान बरकरार हैं। ❑

जी-20 बैठक में हुई जानी पहचानी अनदेखी

वर्ल्ड इकोनॉमिक फोरम का भी कहना है कि स्थितियों से हमने कोई सबक नहीं लिया है। बढ़ते तापमान और जल की कमी से विकासशील देशों में 2050 तक गेहूं की 13 प्रतिशत और चावल की उपज 15 प्रतिशत तक गिरने की संभावना है। सीजीआइएआर के मुताबिक भी आलू, केला और दूसरी नकदी फसलों की उपज में तीव्र गिरावट देखने को मिलेगी। भारतीय कृषि शोध संस्थान यानी आईएआरआई ने भी आने वाले वर्षो में उत्पादन में गिरावट की बात कही है, लेकिन इस बारे में कोई समन्वित प्रयास देखने को नहीं मिल रहा है।

■ देविन्दर शर्मा

बीते माह ब्रिस्बेन में जी–20 देशों के शासनाध्यक्षों की बैठक संपन्न हुई, जिसमें मेजबान आस्ट्रेलिया ने अंतिम रूप से तैयार किए घोषणापत्र में जलवायु परिवर्तन के मुद्दे को शामिल नहीं करने का हरसंभव प्रयास किया। अमेरिका और यूरोपीय संघ की ओर से दबाव डाले जाने के बाद ही तैयार किए गए अंतिम घोषणापत्र में जलवायु परिवर्तन के मुद्दे को जगह मिल पाई। ब्रिस्बेन घोषणापत्र में अंततोगत्वा एक पैराग्राफ जोड़ा गया, जो जलवायु परिवर्तन की समस्या के समाधान के लिए प्रभावी कार्रवाई की वकालत करता है। ऐसा इसलिए ताकि निरंतर रूप से आर्थिक विकास को जारी रखा जा सके और व्यावसायिक निश्चितता तथा निवेश को बरकरार रखा जा सके। इस बारे में जी–20 ने पूर्व में किए गए समझौतों को लेकर अपनी प्रतिबद्धता दोहराई और 2015 में फ्रांस की राजधानी पेरिस में जलवायु परिवर्तन पर होने वाले संयुक्त राष्ट्र फ्रेमवर्क कनवेंशन के 21वें सम्मेलन को लेकर अपनी सहमति जताई।

जी–20 देश जलवायु परिवर्तन की समस्या के समाधान के प्रति अनिच्छुक दिखे। हालांकि दुनिया के दो सर्वाधिक

प्रदूषण करने वाले देशों अमेरिका और चीन के राष्ट्रपतियों ने ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन में कटौती के लिए आपसी समझौते की घोषणा की। इस समझौते के मुताबिक चीन 2030 तक कार्बन डाइऑक्साइड में कटौती करने के लिए अपना सर्वोत्तम प्रयास करेगा, जबकि अमेरिका 2030 तक इसमें 28 फीसद की कटौती करेगा जो कि उसकी पूर्व की प्रतिबद्धता के मुताबिक वर्ष 2005 के स्तर पर होगा। इस समझौते को लेकर अमेरिकी मीडिया ने तारीफ करते हुए कहा है कि जलवायु परिवर्तन के मसले में किया गया यह समझौता प्रदूषण फैलाने वाले दोनों ही देशों के लिए एक बेहतर डील अथवा सौदा है।

अमेरिका और चीन ने अपने हिसाब से लक्ष्यों का निर्धारण किया है और दुनिया न केवल उनको चुपचाप देख रही है, बल्कि उनकी सराहना भी कर रही है। इसके विपरीत भारत की स्थिति यही है कि वर्तमान में यहां प्रति व्यक्ति कार्बन डाइऑक्साइड का प्रति व्यक्ति उत्सर्जन तकरीबन 1.6 टन के बराबर है और 2030 तक इसके 4 टन से अधिक बढ़ने की संभावना नहीं है।

नई दिल्ली स्थित सीएसई यानी सेंटर फॉर साइंस एंड एनवायर्नमेंट ने अपने एक विश्लेषण में बताया है कि अमेरिका और चीन दोनों ही देशों ने कुछ न करने की पारस्परिक सुविधा के लिहाज से यह समझौता किया है जो दोनों ही

देशों को प्रदूषण फैलाने की अनुमति प्रदान करता है। इस समझौते के मुताबिक चीन ने कोई लक्ष्य नहीं तय किया है। आगामी 16 वर्षों में उसे प्रदूषण फैलाने वाली गैसों का उत्सर्जन कम करना है, लेकिन ध्यान रहे कि इस समय तक प्रति व्यक्ति गैस उत्सर्जन का स्तर तकरीबन 12 से 13 टन होगा। इसी तरह अमेरिका ने 2020 तक उत्सर्जन में 17 प्रतिशत कटौती का लक्ष्य निर्धारित किया है। इसका मतलब है कि उसे फिलहाल राहत की सांस मिल गई है और यहां भी 2030 तक प्रति व्यक्ति उत्सर्जन का स्तर 12 से 13 टन के बराबर होगा।

अमेरिका और चीन ने अपने हिसाब से लक्ष्यों का निर्धारण किया है और दुनिया न केवल उनको चुपचाप देख रही है, बल्कि उनकी सराहना भी कर रही है। इसके विपरीत भारत की स्थिति यही है कि वर्तमान में यहां प्रति व्यक्ति कार्बन डाइऑक्साइड का प्रति व्यक्ति उत्सर्जन तकरीबन 1.6 टन के बराबर है और 2030 तक इसके 4 टन से अधिक बढ़ने की संभावना नहीं है।

अमेरिका और चीन दोनों ही 40 प्रतिशत से अधिक ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन करते हैं, लेकिन इस समझौते के बाद वे बिना किसी बाधा के अगले 16 वर्षों तक ऐसा करते रहेंगे, जिसका वैश्विक जलवायु पर खतरनाक प्रभाव होगा। इसका सबसे खराब प्रभाव विकासशील और सबसे कम विकसित देश महसूस कर रहे हैं। निराशाजनक यह है कि ये देश उस गड़बड़ी की कीमत चुका रहे हैं जो उन्होंने की ही नहीं है। तापमान में वृद्धि के कारण वैश्विक जलवायु के लिए गंभीर खतरा पैदा हो गया है। इसका प्रभाव ग्लेशियरों के पिघलने और समुद्र के जलस्तर में बढ़ोतरी के रूप में देखने को मिलेगा। इसका सबसे अधिक खतरनाक प्रभाव खाद्यान्नों और पीने के पानी पर पड़ेगा। तमाम विशेषज्ञों का कहना है कि इससे विभिन्न देशों के बीच और देश के अंदर भी राजनीतिक संकट बढने की संभावना है।

ग्रीनहाउस गैसों के कुल उत्सर्जन का एक तिहाई हिस्सा वास्तव में कृषि और वनों से होता है। इस बारे में 15 कृषि शोध केंद्रों का संचालन करने वाली संस्था सीजीआइएआर यानी कंसल्टेटिव ग्रुप ऑन इंटरनेशनल एग्रीकल्चर रिसर्च का कहना है कि जलवायु परिवर्तन में बदलाव लाने के लिए कृषि क्षेत्र से होने वाले कार्बन उत्सर्जन को सीमित किया जाना महत्वपूर्ण है। वनों के उन्मूलन और भूमि प्रयोग में बदलाव से तकरीबन 12000 मेगाटन कार्बन डाइऑक्साइड का उत्सर्जन प्रति वर्ष वातावरण में होता है। ग्रीनहाउस गैस के उत्सर्जन में इतना अधिक योगदान जलवायु असमानता को जन्म देगा।

जलवायु परिवर्तन में कृषि की उल्लेखनीय भूमिका को देखते हुए जी–20 देशों से खाद्य सुरक्षा के मुद्दे पर दूरदर्शी नीति अथवा रुख की अपेक्षा थी, लेकिन यह उम्मीद अधूरी रही। खाद्य सुरक्षा को लेकर 2010 में सियोल में एक सहमति बनी थी और कृषि तथा खाद्यान्न कीमतों में अस्थिरता को लेकर 2011 में फ्रांस की अध्यक्षता में एक एक्शन प्लान अथवा कार्ययोजना तैयार की गई थी, लेकिन यह सारी पहल कृषि बाजार सूचना तंत्र के निर्माण पर ही जाकर थम गई। इसी तरह पश्चिमी अफ्रीका में खाद्यान्न भंडार के लिए किया गया प्रयास भी नाकामी की भेंट चढ़ गया। इस पृष्ठभूमि में ही जी–20 के एजेंडे से खाद्यान्न सुरक्षा का मुद्दा गायब नजर आया।

वर्ष 2013 के घोषणापत्र में जी–20 ने खाद्य सुरक्षा के मुख्य विषय पर बल दिया था। इसके तहत कृषि उत्पादकता बढ़ाने के साथ–साथ वैश्विक खाद्य तंत्र की मजबूती के लिए निवेश तथा व्यापार को जरूरी माना गया। इसे आर्थिक विकास और रोजगार को प्रोत्साहन देने के लिए भी जरूरी समझा गया। उत्पादकता बढ़ाने के लिए छोटे किसानों की मदद की बात कही गई, लेकिन कुल मिलाकर यह प्रस्ताव उस समस्या के समाधान की दिशा में कोई पहल नहीं करता, जिस कारण आज वैश्विक कृषि जलवायु परिवर्तन के लिए एक बड़ा खतरा बन गई है। सीजीआइएआर भी इस बात को स्वीकार करता है कि खाद्यान्नों से संबंधित उत्सर्जन और इसका जलवायु परिवर्तन पर प्रभाव फसलों के उत्पादन के तरीकों को पूरी तरह बदलने वाला है।

इस बारे में वर्ल्ड इकोनॉमिक फोरम का भी कहना है कि स्थितियों से हमने कोई सबक नहीं लिया है। बढ़ते तापमान और जल की कमी से विकासशील देशों में 2050 तक गेहूं की 13 प्रतिशत और चावल की उपज 15 प्रतिशत तक गिरने की संभावना है। सीजीआइएआर के मुताबिक भी आलू, केला और दूसरी नकदी फसलों की उपज में तीव्र गिरावट देखने को मिलेगी। भारतीय कृषि शोध संस्थान यानी आईएआरआई ने भी आने वाले वर्षों में उत्पादन में गिरावट की बात कही है, लेकिन इस बारे में कोई समन्वित प्रयास देखने को नहीं मिल रहा है। खेती के टिकाऊ और पर्यावरण अनुकूल उपायों पर जोर देने की आवश्यकता है, लेकिन ऐसा कुछ भी नहीं किया जा रहा है। ❑

बढ़ते प्रदूषण से घट रही है पैदावार

अब भी समय है कि हम सब चेत जाएं और पर्यावरण संरक्षण पर ध्यान दें। यदि हमने ऐसा नहीं किया तो मानव जाति के विनाश का खतरा है। वास्तव में पर्यावरण संरक्षण ऐसा ही है जैसे अपने जीवन की रक्षा करने का संकल्प। सरकार और समाज के स्तर पर लोगों को पर्यावरण के मुद्दे पर गंभीर होना होगा, अन्यथा प्रकृति का कहर झेलने के लिए हमें तैयार रहना होगा। यह कहर बाढ़, सूखा, खाद्यान्न में कमी, किसी भी रूप में हो सकता है।

■ शशांक द्विवेदी

हाल में ही 'पर्यावरण और वायु प्रदूषण का भारतीय कृषि पर प्रभाव' शीर्षक से 'प्रोसिडिंग्स ऑफ नेशनल एकेडमी ऑफ साइंस' में प्रकाशित एक शोध पत्र के नतीजों ने सरकार, कृषि विशेषज्ञों और पर्यावरणविदों की चिंता बढ़ा दी है। शोध के अनुसार भारत के अनाज उत्पादन पर वायु प्रदूषण का सीधा और नकारात्मक असर देखने को मिल रहा है। देश में धुएं में बढ़ोतरी की वजह से अनाज के लक्षित उत्पादन में कमी देखी जा रही है। करीब 30 सालों के आंकड़े का विश्लेषण करते हुए वैज्ञानिकों ने एक ऐसा सांख्यिकीय मॉडल विकसित किया जिससे यह अंदाजा मिलता है कि घनी आबादी वाले राज्यों में वर्ष 2010 के मुकाबले वायु प्रदूषण की वजह से गेहूं की पैदावार 50 प्रतिशत से कम रही। खाद्य उत्पादन में करीब 90 प्रतिशत की कमी धुएं की वजह से देखी गई जो कोयला और दूसरे प्रदूषक तत्वों की वजह से हुआ। भूमंडलीय तापमान वृद्धि और वर्षा के स्तर की भी 10 प्रतिशत बदलाव में अहम भूमिका है।

कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय में वैज्ञानिक और शोध की लेखिका जेनिफर बर्नी के अनुसार ये आंकड़े चौंकाने वाले हैं, हालांकि इसमें बदलाव संभव है। वह कहती हैं, हमें उम्मीद है कि हमारे शोध से वायु प्रदूषण को कम करने के संभावित फायदों के लिए कोशिश की जाएगी। असल में जब भी सरकार वायु प्रदूषण या इसकी लागत पर कोई चर्चा करती है और इसे रोकने के लिए नए कानून बनाने की बात करती है तो कृषि क्षेत्र पर विचार नहीं किया जाता है। पिछले दिनों संयुक्त राष्ट्र में जलवायु परिवर्तन के लिए बने अंतर सरकारी पैनल (आइपीसीसी) रिपोर्ट

में भी इसी तरह की चेतावनी दी गई थी। 'जलवायु परिवर्तन 2014 – प्रभाव, अनुकूलन और जोखिम' शीर्षक से जारी इस रिपोर्ट में कहा गया है कि जलवायु परिवर्तन का प्रभाव पहले से ही सभी महाद्वीपों और महासागरों में विस्तृत रूप ले चुका है।

रिपोर्ट के अनुसार जलवायु गड़बड़ी के कारण एशिया को बाढ़, गर्मी के कारण मृत्यु, सूखा तथा पानी से संबंधित खाद्य की कमी का सामना करना पड़ सकता है। कृषि आधारित अर्थव्यवस्था वाले भारत जैसे देश, जो केवल मानसून पर ही निर्भर हैं, के लिए यह काफी खतरनाक हो सकता है। जलवायु परिवर्तन की वजह से दक्षिण एशिया में गेहूं की पैदावार पर भी नकारात्मक प्रभाव पड़ेगा। नियंत्रण खाद्य उत्पादन धीरे–धीरे घट रहा है। एशिया में तटीय और शहरी इलाकों में बाढ़ की वृद्धि से बुनियादी ढांचे, आजीविका और बस्तियों को काफी नुकसान हो सकता है। ऐसे में मुंबई, कोलकाता और ढाका जैसे शहरों पर खतरे की संभावना बढ़ सकती है। इस रिपोर्ट के आने के बाद अब यह स्पष्ट है कि कोयला और उच्च कार्बन उत्सर्जन से भारत के विकास और अर्थव्यवस्था पर धीरे–धीरे खराब प्रभाव पड़ेगा। हाल ही में महाराष्ट्र और मध्य प्रदेश में करीब 12

आज दुनिया पूंजीवाद के पीछे भाग रही है। उसे तथाकथित विकास के अलावा कुछ और दिख ही नहीं रहा है। वास्तव में जिसे विकास समझा जा रहा है, वह विकास है ही नहीं। क्या सिर्फ औद्योगिक उत्पादन में बढ़ोत्तरी कर देने को विकास माना जा सकता है, जबकि एक बड़ी आबादी को अपनी जिंदगी बीमारी और पलायन में गुजारनी पड़े। वायु प्रदुषण और कृषि के इस शोध पत्र के नतीजों को सरकार और समाज के स्तर पर गंभीरता से लेना होगा, अन्यथा इसके नतीजे आगे चलकर और भी ज्यादा खतरनाक होंगे।

लाख हेक्टेयर में हुई ओलावृष्टि से गेहूं, कपास, ज्वार, प्याज जैसी फसलें खराब हो गई थीं। ये घटनाएं भी आईपीसीसी की अनियमित वर्षा पैटर्न को लेकर की गई भविष्यवाणी की तरफ ही इशारा कर रही हैं।

आईपीसीसी ने इससे पहले भी समग्र वर्षा में कमी तथा चरम मौसम की घटनाओं में वृद्धि की भविष्यवाणी की थी। इस रिपोर्ट में भी गेहूं के ऊपर खराब प्रभाव पड़ने की भविष्यवाणी की गई है। भारत सरकार को इस समस्या से उबरने के लिए सकारात्मक कदम उठाने होंगे। तेल रिसाव और कोयला आधारित पावर प्लांट, सामूहिक विनाश के हथियार हैं। इनसे खतरनाक कार्बन उत्सर्जन का खतरा होता है। शांति और सुरक्षा के लिए इन्हें हटाकर अक्षय ऊर्जा की तरफ कदम बढ़ाना अब हमारी जरूरत और मजबूरी दोनों बन गया है। सरकार को तुरंत ही इस पर कार्रवाई करते हुए स्वच्छ ऊर्जा से जुड़ी योजनाओं को लाना चाहिए।

पिछले कुछ सालों से पर्यावरण संबंधी इस तरह की रिपोर्ट और चेतावनी आने के बावजूद पर्यावरण का मुद्दा हमारे राजनीतिक दलों के एजेंडे में शामिल ही नहीं है। केंद्र और राज्य सरकारों की प्राथमिकता सूची में भी पर्यावरण नहीं है। देश में हर तरफ, प्रत्येक सरकार और पार्टी विकास की बातें करती है। लेकिन ऐसे विकास का क्या फायदा जो लगातार विनाश को आमंत्रित करता है। ऐसे विकास को क्या कहें जिसकी वजह से संपूर्ण मानवता का अस्तित्व ही खतरे में पड़ गया है।

पिछले दिनों पर्यावरण एवं वन मंत्रालय ने जलवायु परिवर्तन पर एक रिपोर्ट जारी करते हुए चेताया है कि यदि पृथ्वी के औसत तापमान का बढ़ना ऐसे ही जारी रहा तो आगामी वर्षों में भारत को इसके दुष्परिणाम झेलने होंगे। इसका असर देश की कृषि व्यवस्था पर भी पड़ेगा। जिस तरह मौसम परिवर्तन दुनिया में खाद्यान्न पैदावार और आर्थिक समृद्धि को प्रभावित कर रहा है, आने वाले समय में जिंदा रहने के लिए जरूरी चीजें इतनी महंगी हो जाएंगी कि उससे देशों के बीच युद्ध जैसे हालात पैदा हो जाएंगे। यह खतरा उन देशों में ज्यादा होगा जहां कृषि आधारित अर्थव्यवस्था है। पर्यावरण का सवाल जब तक तापमान में बढ़ोत्तरी से मानवता के भविष्य पर आने वाले खतरों तक सीमित रहा, तब तक विकासशील देशों का इसकी ओर उतना ध्यान नहीं गया। परंतु अब जलवायु चक्र का खतरा खाद्यान्न उत्पादन को प्रभावित कर रहा है, किसान यह तय नहीं कर पा रहे हैं कि कब बुवाई करें और कब फसल काटें। तापमान में बढ़ोत्तरी इसी तरह जारी रही तो खाद्य उत्पादन 40 प्रतिशत तक घट जाएगा। इससे पूरे विश्व में खाद्यान्नों की भारी कमी हो जाएगी। ऐसी स्थिति विश्वयुद्ध से कम खतरनाक नहीं होगी।

आज दुनिया पूंजीवाद के पीछे भाग रही है। उसे तथाकथित विकास के अलावा कुछ और दिख ही नहीं रहा है। वास्तव में जिसे विकास समझा जा रहा है, वह विकास है ही नहीं। क्या सिर्फ औद्योगिक उत्पादन में बढ़ोत्तरी कर देने को विकास माना जा सकता है, जबकि एक बड़ी आबादी को अपनी जिंदगी बीमारी और पलायन में गुजारनी पड़े। वायु प्रदुषण और कृषि के इस शोध पत्र के नतीजों को सरकार और समाज के स्तर पर गंभीरता से लेना होगा, अन्यथा इसके नतीजे आगे चलकर और भी ज्यादा खतरनाक होंगे। अब भी समय है कि हम सब चेत जाएं और पर्यावरण संरक्षण पर ध्यान दें। यदि हमने ऐसा नहीं किया तो मानव जाति के विनाश का खतरा है। वास्तव में पर्यावरण संरक्षण ऐसा ही है जैसे अपने जीवन की रक्षा करने का संकल्प। सरकार और समाज के स्तर पर लोगों को पर्यावरण के मुद्दे पर गंभीर होना होगा, अन्यथा प्रकृति का कहर झेलने के लिए हमें तैयार रहना होगा। यह कहर बाढ़, सूखा, खाद्यान्न में कमी, किसी भी रूप में हो सकता है। कृषि और वायु प्रदूषण के इस शोध के आकलन में यह भी बताया गया है कि अगर प्रदूषण कम होगा तो कृषि उत्पादन भी बेहतर हो सकता है। इस ऐतिहासिक शोध से सामान्य तौर पर इसी बात की पुष्टि की गई है कि खाद्य उत्पादन पर वायु प्रदूषण का गहरा असर पड़ता है। ❑

बढ़ रही है देश में बाल मृत्यु दर

भारत में 1990 के बाद से बाल मृत्यु दर के मामलों में आधे से अधिक की गिरावट आई है, लेकिन पिछले साल पांच से कम उम्र के बच्चों की मौत की सबसे अधिक मामले भारत में ही दर्ज किए गए हैं। साफ–सफाई की कमी एक बहुत बड़ी चुनौती है क्योंकि इसी से गंभीर बीमारियां फैलती हैं। जिनकी चपेट में आने से बच्चों की मौत तक हो जाती है। दक्षिण एशियाई देशों में अब भी करीब 70 करोड़ बच्चों को शौच करने के लिए खुले स्थानों पर जाना पड़ता है।

■ **मुकुल श्रीवास्तव**

स्वास्थ्य किसी भी देश के लिए सर्वोच्च प्राथमिकता वाला क्षेत्र होता है, पर आंकड़ों के हिसाब से भारत की तस्वीर इस मायने में बहुत उजली नहीं है। बाल स्वास्थ्य भी इसका कोई अपवाद नहीं है। बच्चे देश का भविष्य हैं पर उन बच्चों का क्या जो भविष्य की ओर बढ़ने की बजाय अतीत का हिस्सा बन जाते हैं! साल 2011 में, दुनिया के अन्य देशों की मुकाबले भारत में पांच वर्ष से कम उम्र के बच्चों की सबसे ज्यादा मौतें हुई। यह आंकड़ा समस्या की गंभीरता को बताता है जिसके अनुसार भारत में प्रतिदिन 4,650 से ज्यादा पांच वर्ष से कम उम्र के बच्चों की मृत्यु होती है।

संयुक्त राष्ट्र की संस्था यूनिसेफ की नई रिपोर्ट भी यह बताती है कि बच्चों के स्वास्थ्य के मामले में अभी कितना कुछ किया जाना है। संयुक्त राष्ट्र की रिपोर्ट 'लेवल्स एंड ट्रेंड्स इन चाइल्ड मोरटैलिटी 2014' में कहा गया है कि साल 2013 में भारत में 13.4 लाख से अधिक बच्चों की मौत के मामले दर्ज किए गए। 1990 में भारत में शिशु मृत्यु दर प्रति एक हजार बच्चों के जन्म पर 88 थी, जो 2013 में घटकर 41 हो गई।

जाहिर है कि स्थिति में सुधार हुआ है, लेकिन मौजूदा हालात भी संतोषजनक कतई नहीं हैं। रिपोर्ट में कहा गया है कि वैसे तो लोगों की सेहत के लिए काफी इंतजाम किए गए हैं और मानवाधिकारों की स्थिति में भी सुधार हुआ है, लेकिन अब भी बहुत से इलाकों और समुदायों में बहुत गहरी असमानता बनी हुई है। इनमें से भी करीब एक चौथाई यानी 25 प्रतिशत मौतें सिर्फ भारत में होती हैं। नाइजीरिया में करीब दस फीसद मौतें होती हैं। दुनिया भर में जन्म के पांच साल के भीतर ही करीब एक करोड़ 27 लाख बच्चों की मौतें होती हैं। उनमें से आधी यानी करीब 63 लाख बच्चों की मौत सिर्फ पांच देशों में होती है।

वास्तविकता यह भी है कि आर्थिक आंकड़ों और निवेश के नजरिये से भारत तरक्की करता दिखता है, पर इस आर्थिक विकास का असर समाज के आर्थिक रूप से कमजोर तबकों पर नहीं हो रहा है। इसी का परिणाम पांच वर्ष से कम उम्र के बच्चों की बड़ी तादाद में मृत्यु के रूप में सामने आता है, वह भी डायरिया जैसी बीमारी से, जिसका बचाव थोड़ी सावधानी और जागरूकता से किया जा सकता है। बढ़ते शहरीकरण ने शहरों में जनसंख्या के घनत्व को बढ़ाया है।

भारत में 1990 के बाद से बाल मृत्यु दर के मामलों में आधे से अधिक की गिरावट आई है, लेकिन पिछले साल पांच से कम उम्र के बच्चों की मौत की सबसे अधिक मामले भारत में ही दर्ज किए गए हैं। साफ–सफाई की कमी एक बहुत बड़ी चुनौती है क्योंकि इसी से गंभीर बीमारियां फैलती हैं। जिनकी चपेट में आने से बच्चों की मौत तक हो जाती है। दक्षिण एशियाई देशों में अब भी करीब 70 करोड़ बच्चों को शौच करने के लिए खुले स्थानों पर जाना पड़ता है। जन्म के पहले महीने में विश्व में कुल जितने बच्चों की मौत होती है, उनमें से करीब दो तिहाई मौतें सिर्फ दस देशों में होती हैं।

संयुक्त राष्ट्र का यह अध्ययन यह आकलन करता है कि भारत में जन्म लेने वाले प्रत्येक एक हजार बच्चों में से इकसठ बच्चे अपना पांचवा जन्मदिन नहीं मना पाते हैं। महत्वपूर्ण बात यह है कि यह संख्या रवांडा (54 बच्चों की मृत्यु), नेपाल (48 बच्चों की मृत्यु) और कंबोडिया (43 बच्चों की मृत्यु) जैसे आर्थिक रूप से पिछड़े देशों के मुकाबले ज्यादा है। सिएरा लियोन में बच्चों के जीवित रहने की संभावनाएं सबसे कम रहती हैं जहां प्रत्येक

एक हजार बच्चों में मृत्यु दर एक सौ पचासी है। दुनिया भर में बच्चों की मृत्यु की सबसे बड़ी वजह न्यूमोनिया है जिसके कारण अठारह प्रतिशत मौतें होती हैं। दूसरी वजह डायरिया है जिससे ग्यारह प्रतिशत मौतें होती हैं। भारत डायरिया से होने वाली मौतों के मामले में सबसे आगे है। डायरिया एक ऐसी बीमारी है जिससे थोड़ी–सी जागरूकता से बचा जा सकता है और इससे होने वाली मौतों की संख्या में कमी लाई जा सकती है।

वर्ष 2010 में जितने बच्चों की मृत्यु हुई, उनमें तेरह प्रतिशत की मृत्यु की वजह डायरिया ही था। दुनिया में डायरिया से होने वाली मौतों में अफगानिस्तान के बाद भारत का ही स्थान है। रिपोर्ट के मुताबिक भारत जैसे देशों में डायरिया की मुख्य वजह साफ पानी की कमी और निवास स्थान के आसपास गंदगी का होना है। इसकी एक वजह खुले में मल त्याग भी है। गंदगी, कुपोषण और मूलभूत स्वास्थ्य सेवाओं का अभाव मिलकर एक ऐसा दुष्चक्र रचते हैं जिसका शिकार ज्यादातर गरीब घरों के बच्चे होते हैं।

वास्तविकता यह भी है कि आर्थिक आंकड़ों और निवेश के नजरिये से भारत तरक्की करता दिखता है, पर इस आर्थिक विकास का असर समाज के आर्थिक रूप से कमजोर तबकों पर नहीं हो रहा है। इसी का परिणाम पांच वर्ष से कम उम्र के बच्चों की बड़ी तादाद में मृत्यु के रूप में सामने आता है, वह भी डायरिया जैसी बीमारी से, जिसका बचाव थोड़ी सावधानी और जागरूकता से किया जा सकता है। बढ़ते शहरीकरण ने शहरों में जनसंख्या के घनत्व को बढ़ाया है। निम्न आयवर्ग के लोग रोजगार की तलाश में उन शहरों का रुख कर रहे हैं जो पहले से ही जनसंख्या के बोझ से दबे हुए हैं। इसका नतीजा शहरों में निम्न स्तर की जीवन दशाओं के रूप में सामने आता है।

दूसरी तरफ, गांवों में जहां जनसंख्या का दबाव कम हैं, वहां स्वास्थ्य सेवाओं की हालत दयनीय है और स्वास्थ्य संबंधी मुद्दों पर पर्याप्त जागरूकता का अभाव है। विकास संचार के मामले में अभी हमें एक लंबा रास्ता तय करना है जिससे लोगों में जागरूकता जल्दी लाई जाए। विशेषकर देश के ग्रामीण इलाकों में इलेक्ट्रॉनिक मीडिया का प्रभाव ज्यादा है, पर वह अपने मनोरंजन एवं सूचना में

संतुलन बना पाने में असफल रहा है। इसका नतीजा संचार संदेशों में कोरे मनोरंजन की अधिकता के रूप में सामने आता है। संचार के परंपरागत माध्यम भी अपना प्रभाव छोड़ने में असफल रहे हैं। वैसे भी वैश्वीकरण की लहर इन परंपरागत माध्यमों के लिए खतरा बन कर आई है। सरकार का रवैया इस दिशा में कोई खास उत्साह बढ़ाने वाला नहीं रहा है। देश के सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) का 1.4 प्रतिशत स्वास्थ्य सेवाओं पर खर्च किया जाता है जो कि काफी कम है। सरकार ने इसे बढ़ाने का वायदा तो किया पर ये कभी पूरा हो नहीं पाया।

यह स्थिति तब है जबकि भारत सरकार के सहस्राब्दि विकास लक्ष्य के अनुसार वह साल 2015 तक शिशु मृत्यु दर को प्रति 1,000 बच्चों पर 38 की संख्या तक ले आएगी। बढ़ती शिशु मृत्यु दर का एक और कारण कुपोषण भी है। 'सेव द चिल्ड्रन' संस्था का एक अध्ययन बताता है कि भारत बच्चों को पूरा पोषण मुहैया कराने के मामले में बांग्लादेश और बेहद पिछड़े माने जाने वाले अफ्रीकी देश 'डेमोक्रेटिक रिपब्लिक ऑफ कांगो' से भी पिछड़ा हुआ है। हालांकि भारत में पांच वर्ष से कम आयु के बच्चों की मृत्यु दर 1990 के मुकाबले 46 प्रतिशत कम हुई है, पर इस आंकड़े पर गर्व नहीं किया जा सकता। सहस्त्राब्दि विकास लक्ष्य को तभी प्राप्त किया जा सकता है जब गरीबों में स्वास्थ्य संबंधी जागरूकता पैदा की जाए और उनकी जीवन दशाओं को बेहतर किया जाए। इस दिशा में सरकार को सार्थक पहल करनी होगी। पर यूनिसेफ की यह रिपोर्ट बताती है कि यह आंकड़ा प्राप्त करना आसान नहीं होगा। ❑

बहस

संस्कृति विरोधी मानस

हमारे आर्ष ग्रंथों में उन तथ्यों का भी समावेश है, जिन पर आधुनिक विज्ञान आज शोध कर रहा है। आर्यभट्ट, वराहमिहिर, चरक, सुश्रुत ऐसे ही कुछ नाम हैं। अपने देश के गौरव बिंदुओं और उसकी समृद्ध अक्षुण्ण परंपरा को नकार कर कोई भी देश स्वाभिमान के साथ खड़ा नहीं रह सकता। क्या कारण है कि जहां विश्व की कई सभ्यताएं काल के गाल में समा गईं, वहीं सनातन सभ्यता चिरंतन और नित नूतन है? इस थाती को भावी पीढ़ी तक पहुंचाने का काम संस्कृत ही कर सकती है।

■ **बलबीर पुंज**

केन्द्रीय विद्यालयों में तीसरी भाषा के रूप में जर्मन की जगह संस्कृत को स्थान देने के सरकारी निर्णय पर आपत्ति करने वाले कौन हैं? इसी बिरादरी को केंद्रीय मानव संसाधन मंत्री का ज्योतिषी से मिलना नागवार गुजरा है। उनका तर्क है कि शिक्षामंत्री के नाते उन्हें अंधविश्वास और अवैज्ञानिक मान्यताओं को बढ़ावा नहीं देना चाहिए। ज्योतिष में विश्वास या शादी–विवाह में कुंडली मिलाना निजी आस्था का मामला है और उसमें किसी अन्य का हस्तक्षेप समझ से परे है। भगवान को किसी ने नहीं देखा तो क्या आस्तिकों और देवालयों को प्रतिबंधित कर दिया जाए?

संस्कृत का विरोध करने वाले बुद्धिजीवियों के अनुसार संस्कृत पूजापाठ की भाषा है और आज के आधुनिक युग में इसके ज्ञान का कोई औचित्य नहीं है। इनका यह भी तर्क है कि जर्मनी का वैश्विक बाजार और महत्व अधिक है। यह ठीक है कि वैश्विक बाजार में आज संपर्क भाषा के रूप में अंग्रेजी का वर्चस्व है, किंतु विश्व में सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषाओं की क्या स्थिति है? दुनिया में सबसे अधिक लोग मंडारिन भाषा का उपयोग करते हैं, जो चीन, ताइवान, सिंगापुर, मलेशिया आदि में रहते हैं। इसके बाद विश्व में सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषा हिंदी है, जो भारत, नेपाल, फिजी, मॉरिशस के लोग बोलते हैं। किंतु देश में कथित संभ्रांतवादियों का एक तबका है जो हिंदी को लेकर हीनभावना रखता है। अंग्रेजी बोलने वालों की संख्या विश्व में 5.43 प्रतिशत ही है। विश्व में बोली जाने वाली भाषाओं में जर्मन ग्यारहवें स्थान पर है, किंतु कुलीन कहने वाले इसे इस देश की संस्कृति की वाहक संस्कृत से अधिक वरीयता दे रहे हैं।

वास्तव में ऐसे लोग मैकाले–मार्क्स के मानसपुत्र हैं। इस देश की शिक्षा पद्धति मैकाले की नीति पर चल रही है, जिसने अंग्रेजी माध्यम को ब्रिटिश औपनिवेशिक हितों को साधने के लिए लागू किया था। उसकी योजना अंग्रेजी भाषा और रहन–सहन से युक्त भारतीय वर्ग का सृजन करना था, जो स्थानीय स्तर पर ब्रितानियों का पक्षधर बनता। आजादी के बाद शिक्षा पद्धति को बदलना चाहिए था, किंतु नेहरू, जो खुद को मनसा आखिरी अंग्रेज मानते थे, ने इसकी आवश्यकता नहीं समझी। उन्होंने शीर्ष शिक्षण नियामक संस्थानों को ऐसे हाथों में सौंपा जो इस धरा की संस्कृति से विरक्त थे।

देश की समृद्ध संस्कृति, आचार विचार, जीवन मूल्य और दर्शन हमारे ग्रंथों में समाहित हैं, जिन्हें हमारे ऋषि–महर्षियों–मनीषियों ने संस्कृत भाषा में संकलित कर रखा है। उस समृद्ध विरासत को समझने और उसे अगली पीढ़ी तक प्रवाहित करने के लिए संस्कृत एक माध्यम है। विडंबना यह है कि भारतीय इतिहास लिखने वाले अधिकांश यूरोपीय विद्वान औपनिवेशिक मानसिकता से ग्रस्त थे और उनकी यह मानसिकता समझी जा सकती है। किंतु कालांतर में भारतीय

संस्कृत का विरोध करने वाले बुद्धिजीवियों के अनुसार संस्कृत पूजापाठ की भाषा है और आज के आधुनिक युग में इसके ज्ञान का कोई औचित्य नहीं है। इनका यह भी तर्क है कि जर्मनी का वैश्विक बाजार और महत्व अधिक है। यह ठीक है कि वैश्विक बाजार में आज संपर्क भाषा के रूप में अंग्रेजी का वर्चस्व है, किंतु विश्व में सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषाओं की क्या स्थिति है? दुनिया में सबसे अधिक लोग मंडारिन भाषा का उपयोग करते हैं, जो चीन, ताइवान, सिंगापुर, मलेशिया आदि में रहते हैं। इसके बाद विश्व में सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषा हिंदी है. . .

इतिहासकारों का भी एक वर्ग ऐसा उभरा, जो यूरोपीय अवधारणाओं की ही पुष्टि में संलग्न रहा। आर्यों का मूल स्थान यूरोप बताने वाले विदेशी लेखकों की मानसिकता औपनिवेशिक अभियान को मुहर लगाने का सूचक है। किंतु इसकी सबसे अधिक वकालत करने वाले इस धरा की समृद्ध संस्कृति व विरासत से कटे–छंटे कम्युनिस्ट इतिहासकार हैं। इसीलिए भारत को आर्यों का मूलस्थान सिद्ध करने वाले इतिहासकार भी कम्युनिस्टों के निशाने पर रहे हैं। इस वर्ग के इतिहासकार आर्य–आक्रमण के मिथक को औपनिवेशिक योजना का हिस्सा मानते हैं।

इनका मानना है कि ऋग्वेद का रचनाकाल कम से कम 5000 ई.पू. है। उनकी यह भी मान्यता है कि सनातन संस्कृति की निरंतरता भारत में ऋग्वेद काल से चलती आ रही है। केवल भारतीय ही नहीं, बल्कि जो विदेशी इतिहासकार भारतीय संस्कृति को सम्मान देते हैं, वे भी कम्युनिस्टों की आलोचना के शिकार हैं। प्रसिद्ध इतिहासकार डॉ. डेविड फ्राली ने अपने शोध से यह स्पष्ट किया है कि ईसा पूर्व सात हजार साल से भी बहुत पहले भारत में सभ्यता का विकास हो चुका था। उनके अनुसार ऐतिहासिक साक्ष्य, साहित्य या पुरातत्व के उत्खन्नों से यह कहीं साबित नहीं होता कि आर्य बाहरी आक्रमणकारी थे। डॉ. फ्राली ने इस बात पर दुख व्यक्त किया है कि भारत में आज भी यही पढ़ाया जा रहा है कि आर्यों ने बाहर से आकर द्रविड़ों को दक्षिण की ओर खदेड़ दिया। कम्युनिस्ट यह भलीभांति जानते हैं कि करीब 95 प्रतिशत भारतीय अपने इतिहास की जानकारी स्कूली जीवन में ही पाते हैं। किशोरवय के मस्तिष्क में जैसी छाप छोड़ दी जाए, वह चिरकाल तक बनी रहती है। कम्युनिस्टों ने अपने झूठ को स्थापित करने के लिए यही आसान रणनीति बनाई है।

कम्युनिस्ट इतिहासकारों ने हड़प्पा सभ्यता का वर्णन करने के दौरान सिंधु–सरस्वती सभ्यता की पूरी तरह अनदेखी की है। सच्चाई यह है कि इतिहासकारों द्वारा खोजी गई 13000 पुरानी बस्तियों में से लगभग 900 आबादियां भारत की प्राचीन नदी सरस्वती और इसकी सहायक नदियों के तट पर बसी थीं।

वैज्ञानिक अनुसंधान से सरस्वती नदी के अस्तित्व और उसके प्रवाह मार्ग का भी पता चल चुका है, किंतु कम्युनिस्ट इतिहासकार पूर्वाग्रहग्रस्त होने के कारण सरस्वती नदी को भारतीय इतिहास का एक मिथक मात्र मानते हैं। उन्हें यह ज्ञात है कि इन्हें मान्यता देने से वैदिक युग की परंपराओं का अविरल प्रवाह वर्तमान दौर तक स्वतः ही चला आएगा, जिसे वे नकारते आए हैं। भारत की महान वैदिक सभ्यता को यथोचित सम्मान देने के बजाए वैदिक संस्कृति का उल्लेख गंवार व अशिक्षित कबीलाई समाज के रूप में किया गया है। **सिंधु घाटी सभ्यता, ऋग्वेद व ऋग्वैदिक काल, उपनिषद, ब्राह्मण, आरण्यक आदि आर्ष ग्रंथ, प्राचीन नदियां और इस देश की सनातनी संस्कृति, पूजा–पद्धतियों पर कम्युनिस्ट इतिहासकार पूर्वाग्रह से ग्रस्त हैं। सिंधु घाटी सभ्यता के उत्खनन से मिले शिवलिंग, पशुपति महादेव के सील, योगी–योगिनियों की मूर्ति आदि को कम्युनिस्ट इतिहासकार नकारते हैं। हड़प्पा संस्कृति में मौजूद लिंग पूजन की पद्धति आज शिवलिंग पूजन के रूप में बहुसंख्य भारतीय समाज में मौजूद है।** वस्तुतः संस्कृति का यही अक्षुण्ण प्रवाह कम्युनिस्टों को सबसे ज्यादा अखरता है। योगी की प्रतिमा को कम्युनिस्ट इतिहासकार मेसोपोटामिया की संस्कृति से जोड़कर देखते हैं। ऋषियों व तपस्वियों की अविरल परंपरा भारत में सिंधु सभ्यता के समय से ही है, इसे स्वीकारने से उनके आर्य आक्रमण के सिद्धांत को झटका लगने का अंदेशा है, इसलिए योगियों की मूर्ति को दूसरी सभ्यता से जोड़ने की कोशिश की जाती है। हमारे आर्ष ग्रंथों में उन तथ्यों का भी समावेश है, जिन पर आधुनिक विज्ञान आज शोध कर रहा है। आर्यभट्ट, वराहमिहिर, चरक, सुश्रुत ऐसे ही कुछ नाम हैं। अपने देश के गौरव बिंदुओं और उसकी समृद्ध अक्षुण्ण परंपरा को नकार कर कोई भी देश स्वाभिमान के साथ खड़ा नहीं रह सकता। क्या कारण है कि जहां विश्व की कई सभ्यताएं काल के गाल में समा गईं, वहीं सनातन सभ्यता चिरंतन और नित नूतन है? इस थाती को भावी पीढ़ी तक पहुंचाने का काम संस्कृत ही कर सकती है। ❑

वैज्ञानिक अनुसंधान से सरस्वती नदी के अस्तित्व और उसके प्रवाह मार्ग का भी पता चल चुका है, किंतु कम्युनिस्ट इतिहासकार पूर्वाग्रहग्रस्त होने के कारण सरस्वती नदी को भारतीय इतिहास का एक मिथक मात्र मानते हैं। उन्हें यह ज्ञात है कि इन्हें मान्यता देने से वैदिक युग की परंपराओं का अविरल प्रवाह वर्तमान दौर तक स्वतः ही चला आएगा, जिसे वे नकारते आए हैं।

लुप्त होने की ओर अग्रसर भारत में संस्कृत, विदेशियों से सीखनी पड़ेगी संस्कृत

विज्ञान में संस्कृत भाषा का योगदान

अगर भारत की जनता और शैक्षणिक क्षेत्र के उच्च स्तर पर बैठे लोगों ने संस्कृत को बचाने में अपना पुरजोर योगदान न दिया तो वह समय दूर नहीं जब भारत के बच्चों को भविष्य की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए हमें संस्कृत सीखने के लिए विदेश जाना पढ़ेगा या संस्कृत सिखाने के लिए विदेशों से अध्यापक बुलाने पड़ेंगे।

■ मनोज 'भारत'

हमेशा यह माना जाता है कि इतिहास में की गई गलतियों को ठीक करके भविष्य की ओर कदम बढ़ाया जाता है। लेकिन ऐसे बहुत से पहलु हैं जिसमें काफी शोधों और अनुसंधानों के बाद वर्तमान में चल रही गलतियों को भारतीय संस्कृति के इतिहास के अनुसार बदलकर भविष्य की ओर कदम बढ़ाया जा रहा है। भारतीय संस्कृति में प्रकृति के साथ सामंजस्य बनाकर चलने की शिक्षा दी गई है और वैज्ञानिकता के आधार पर रीति–रिवाजों और त्योहारों को धर्म के साथ जोड़ा गया है। मगर बड़े दुख की बात है कि भारतीय संस्कृति के इतिहास से सीख विदेशी तो ले रहे हैं किन्तु वर्तमान भारत में लोग प्राचीन भारत की अमूल्य और अकल्पनीय सांस्कृतिक धरोहर को छोड़ पश्चिमी सभ्यता का अंधाधुंध अनुसरण करने में लगे हैं।

भारतीय संस्कृति इतनी विशाल और गहन है कि उसके हर पहलू पर इस लेख में बता पाना संभव नहीं है इसीलिए मेरा प्रयास है कि इस लेख में कम से कम शब्दों में भारत की प्राचीन भाशा संस्कृत के बारे में जानकारी दूँ। कहा जाता है कि संस्कृत विश्व की प्राचीन भाशाओं में से एक है। परन्तु संस्कृत प्राचीन होने के साथ साथ विश्व की सबसे मजबूत भाशा है जिसकों पिछले कई दशकों पर इस पर चल रहे शोधों के बाद विश्व के अलग अलग देशों के बड़े बड़े वैज्ञानिकों ने माना है।

विश्व की जानी–मानी पत्रिका फोर्ब्स ने भी संस्कृत को कम्प्यूटर के इस्तेमाल के लिए सबसे उपयुक्त बताया। भारत में भी अब कुछ संस्थाएं संस्कृत भाशा पर अनुसंधान कार्य कर रही हैं। इसके साथ ही कम्प्यूटर प्रयोग के लिए इसे सर्वश्रेष्ठ माना गया है क्योंकि इसके प्रयोग से नाममात्र की भी अशुद्धता कम्प्यूटर में दृष्टिगोचर नहीं होगी। भाशा का इस्तेमाल

नासा के ''मिशन संस्कृत'' की पुष्टि उसकी वेबसाइट भी करती है। उसमें स्पष्ट उजागर किया है कि विगत 20 साल से नासा संस्कृत पर काफी पैसा और मेहनत लगा चुकी है। संस्कृत के वैज्ञानिक पहलुओं का मुरीद हुआ अमेरिका अब अपनी नई पीढ़ी को संस्कृत सिखाने में जुटा है। अमेरिका के कई विश्व–विद्यालयों में संस्कृत विभाग हैं जहां संस्कृत विशय पढ़ाया जाता है। ब्रिटेन भी लगभग 3 दशकों से अपने बच्चों को संस्कृत सिखा रहा है, इस बात की पुश्टि यूट्यूब पर 'संस्कृत इन ब्रिटिश स्कूल्स' लिखकर की जा सकती है।

एक व्यक्ति के विचारों को दूसरों तक पहुंचाना में होता है और यह भाशा उस कार्य को बखूबी करती है। नासा के वैज्ञानिक की रिपोर्ट यह कहती है कि 2025 के बाद 6ठी और इससे आगे की पीढ़ी के सुपर कम्प्यूटर संस्कृत में काम करेंगे जिससे सुपर कम्प्यूटर को उनकी अधिकतम सीमा तक प्रयोग किया जा सकेगा।

संस्कृत भाशा विचारों के इस आदान प्रदान को बहुत अच्छे से करती है। किसी भी भाशा में लिखी पुस्तक का अनुवाद किसी अन्य भाशा में करने के लिए अगर संस्कृत को माध्यम बनाया जाए तो उसके अर्थों में बदलाव की संभावनाएं काफी कम होती हैं, यह बात भी फोर्ब्स पत्रिका में सन 1985 में कही गई थी। रशियन स्टेट यूनिवर्सिटी ने भी माना है कि संस्कृत में लिखे वेद, उपनिशदों, श्रुति, स्मृति, पुराणों, महाभारत, रामायण आदि में सबसे उन्नत प्रौद्योगिकी का प्रयोग किया गया है। संस्कृत भाशा वर्तमान में ''उन्नत किर्लियन फोटोग्राफी'' तकनीक में इस्तेमाल की जा रही है और यह तकनीक विश्व के कुछ ही देशों के पास मौजूद है।

संस्कृत के जनक पाणिनी ने संस्कृत को सुदृढ़ बनाने के लिए सहायक प्रतीकों में जिस तकनीक का प्रयोग किया है उसी तकनीक का प्रयोग आज कम्प्यूटर प्रोग्रामिक लेंग्वेज में किया जाता है। अमेरिका के एक विश्वविद्यालय ने संस्कृत के जनक पाणिनी के नाम से एक प्रोग्रामिंग भाशा का निर्माण भी किया है जिसका नाम पाणिनि प्रोग्रामिंग लैंग्वेज रखा गया है।

नासा के ''मिशन संस्कृत'' की पुष्टि उसकी वेबसाइट भी करती है। उसमें स्पष्ट उजागर किया है कि विगत 20 साल से नासा संस्कृत पर काफी पैसा और मेहनत लगा चुकी है। संस्कृत के वैज्ञानिक पहलुओं का मुरीद हुआ अमेरिका अब अपनी नई पीढ़ी को संस्कृत सिखाने में जुटा है। अमेरिका के कई विश्व–विद्यालयों में संस्कृत विभाग हैं जहां संस्कृत विशय पढ़ाया जाता है। ब्रिटेन भी लगभग 3 दशकों से अपने बच्चों को संस्कृत सिखा रहा है, इस बात की पुश्टि यूट्यूब पर 'संस्कृत इन ब्रिटिश स्कूल्स' लिखकर की जा सकती है।

विश्व की जानी–मानी पत्रिका फोर्ब्स ने भी संस्कृत को कम्प्यूटर के इस्तेमाल के लिए सबसे उपयुक्त बताया। भारत में भी अब कुछ संस्थाएं संस्कृत भाशा पर अनुसंधान कार्य कर रही हैं। इसके साथ ही कम्प्यूटर प्रयोग के लिए इसे सर्वश्रेष्ठ माना गया है क्योंकि इसके प्रयोग से नाममात्र की भी अशुद्धता कम्प्यूटर में दृष्टिगोचर नहीं होगी।

संस्कृत भाशा में जिस लिपि का प्रयोग किया जाता है वह भी विश्व की सभी लिपियों से ज्यादा अच्छी है। इस लिपि को देवनागरी लिपि कहा जाता है। दिल्ली स्थित राश्ट्रीय मस्तिश्क अनुसंधान केंद्र के अनुसार इस लिपि की दूसरी भाशा हिन्दी बोलने वाले व्यक्ति के मस्तिश्क के दोनों हिस्से सक्रिय रहते हैं। अमेरिकन हिन्दू यूनिवर्सिटी के शोध के अनुसार संस्कृत में बोलने वाले व्यक्ति बीपी, मधुमेह, कोलेस्ट्रोल आदि कई असाध्य बीमारियों से भी मुक्त रहते हैं। संस्कृत में बात करते हुए मुंह के साथ साथ शरीर का तंत्रिका तंत्र सक्रिय रहता है।

कैथोलिक बहुल पोलैंड में भगवत् गीता का पहली बार पोलिश भाषा में अनुवाद किया गया है। यह अनुवाद पोलैंड की अन्ना रकिंसका नामक महिला ने किया है। उन्होंने संस्कृत में पीएचडी की है। उन्होंने संस्कृत की बारीकियों को सीखने के लिए करीब 10 वर्ष वाराणसी में बिताए हैं। इस समय करीब 60 वर्ष की रकिंसका ने दो वर्ष पहले वारसा विश्वविद्यालय के ओरिएंटल इंस्टीट्यूट से पीएचडी की थी। गीता का पोलिश भाषा में अनुवाद हालांकि पहले से ही मौजूद है, लेकिन यह 20वीं शताब्दी के प्रारंभ में अंग्रेजी से किया गया था। मौजूदा अनुवाद रकिंसका ने संस्कृत से पोलिश भाषा में किया है। चार बच्चों की मां रकिंसका ने अपने पति द्वारा प्रोत्साहित किए जाने पर संस्कृत में रूचि ली। उनके घर में सभी बच्चे धारा प्रवाह संस्कृत बोलते हैं। यह बात बाहरी लोगों को असामान्य लग सकती है, लेकिन उनके घर में यह सामान्य दिनचर्या में शामिल है। उनके सबसे छोटे बेटे ने इन दिनों अपना नाम योगानंद रख लिया है। वह वाराणसी में रह रहे हैं। कई वर्षों तक मां–बेटे ने साथ–साथ संस्कृत सीखी है। रकिंसका के अन्य पुत्र फिलिप भी संस्कृत में पीएचडी कर रहे हैं और वह 12 से अधिक बार भारत आ चुके हैं।

अगर भारत की जनता और शैक्षणिक क्षेत्र के उच्च स्तर पर बैठे लोगों ने संस्कृत को बचाने में अपना पुरजोर योगदान न दिया तो वह समय दूर नहीं जब भारत के बच्चों को भविश्य की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए हमें संस्कृत सीखने के लिए विदेश जाना पढ़ेगा या संस्कृत सिखाने के लिए विदेशों से अध्यापक बुलाने पड़ेंगे। मेरा इस लेख को पढ़ने वाले सभी पाठकों से अनुरोध है कि वह अपनी संस्कृति पर गर्व करें शर्म नहीं। ताकि पश्चिमी देशों की नकल करने की बजाय हम हमारी संस्कृति में निहित ज्ञान और विज्ञान के ऊपर शोध करके आगे बढ़ सकें। ❑

नदियों को जोड़ना नहीं है समाधान

पिछले एक दशक के दौरान कई वैज्ञानिक अध्ययनों से सिद्ध हो चुका है कि नदी जोड़ परियोजना बड़े पैमाने पर कर्ज और भौगोलिक बिगाड़ वाली साबित होगी। इसके व्यावहारिक अनुभवों को देखते हुए ही दुनिया के कई देशों ने इससे तौबा की है। भारत सरकार अब तक ऐसा एक भी अध्ययन नहीं पेश कर सकी है, जो कहता हो कि 'नदी जोड़ परियोजना' लाभ की तुलना में कम नुकसानदेह सिद्ध होगी।

■ अरुण तिवारी

आगामी वर्ष 2015–16 जल संरक्षण वर्ष होगा। इस वर्ष के दौरान 'हमारा जिला : हमारा जल' नारे को लेकर जल संसाधन, नदी विकास एवम गंगा सरंक्षण मंत्रालय, हर जिले में पहुंचेगा। प्रत्येक जिले में पानी की दृष्टि से संकटग्रस्त एक गांव को 'जलग्राम' के रूप में चुनकर जल संकट से मुक्त किया जायेगा।

भारत जल सप्ताह के सालाना आयोजन की अगली 13 से 17 जनवरी, 2015 तय की गयी हैं। इन तारीखों तक मंत्रालय जलग्राम की सूची तैयार कर लेगा। प्रत्येक जिले की जल संरचनाओं को चिह्नित करने का काम भी तब तक पूरा हो जायेगा। मंत्रालय चाहता है कि देश का कोई प्रखंड ऐसा न छूट जाए, जिसके बारे में ज्ञात न हो कि उसमें कितनी जल संरचनाएं, कहां और किस स्थिति में हैं। इस समूची तैयारी के लिए सरकार बहुत रफ्तार में काम कर रही है केन्द्रीय जल संसाधन, नदी विकास और गंगा संरक्षण मंत्री उमा भारती ने 'जल मंथन' कार्यक्रम के दौरान ये घोषणाएं की।

उक्त घोषणाएं बेशक उम्मीद जगाने वाली थीं किंतु उन्होंने जिन गैर सरकारी संगठनों से 'नदी जोड़ परियोजना' पर न सहमति ली और न उन्हें 'जल मंथन' के दूसरे दिन आयोजित चर्चा में शामिल करना जरूरी समझा, उनसे तीसरे दिन ऐसी अपेक्षा थी गोया गैर सरकारी संगठन 'नदी जोड़ परियोजना' की पीआर एजेंसी हों। सच पूछें, तो नदी जोड़ पर असल चर्चा सिर्फ और सिर्फ केन्द्र और राज्यों के संबंधित अधिकारियों और मंत्रियों के बीच ही हुई। चर्चा का असल उद्देश्य भी नदी जोड़ परियोजनाओं को लेकर केन्द्र और राज्य सरकारों में सहमति बनाना ही था। बकौल उमा भारती, राज्यों द्वारा कुछ आंशकायें जताई गईं हैं। उनके निराकरण तथा कुछ सावधानियों के मंत्रालयी आश्वासन के बाद दो–एक राज्यों को छोड़कर सभी नदी जोड़ने हेतु सहमत हैं। हो सकता है, यह सच हो किंतु प्रश्न यह है कि क्या वे किसान और ग्रामीण सहमत हैं, जिनके खेतों को सींचने और पेयजल

पौड़ी गढ़वाल के उफैरखाल इलाके में सच्चिदानंद भारती का काम गवाह है कि यदि समाज चाहे तो, अपने पानी का इंतजाम खुद कर सकता है। यह प्रयास इसका भी गवाह है कि छोटी–छोटी जलसंचनाओं का संजाल, सूख गई नदी को जिंदा कर सकता है। राजस्थान के अलवर, जयपुर और करौली जिले में तरुण भारत संघ के साथ मिलकर ग्रामीणों द्वारा किए गये संगठित प्रयास, सात छोटी–छोटी नदियों के सदानीरा बनने की कहानी कहते हैं।

मुहैया कराने की ओट में इस कृत्य को अंजाम देने की कोशिश की जा रही है?

सवाल है कि नदी जोड़ परियोजना आगे बढ़ाने से पहले भाजपानीत सरकार को क्या किसानों से नहीं पूछना नहीं चाहिए कि वे इस परियोजना के पक्ष में हैं अथवा नहीं? क्या यह जानने की कोशिश नहीं होनी चाहिए कि भारतीय कृषि नहरी सिंचाई के पक्ष में है या भूजल सिंचाई के? भारत, व्यापक भू–सांस्कृतिक विविधता वाला देश है। यहां हर इलाके में सिंचाई और पेयजल उपलब्धता सुनिश्चित करने हेतु एक जैसी तकनीक अथवा माध्यम अनुकूल नहीं कहे जा सकते। ऐसे देश में हर इलाके के किसान व खेती के जवाब भिन्न हो सकते हैं। जन सहमति बनाये बगैर नदी जोड़ परियोजना को आगे बढ़ाना, दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र में तंत्र द्वारा लोक की अनदेखी नहीं तो और क्या मानी जाए? उस पर विरोधाभास यह कि जल संसाधन मंत्री ने उन प्रयासों की तारीफ की, जिनसे सूखी नदियां पानीदार हुईं हैं।

गौरतलब है कि जल संसाधन मंत्री ने उत्तराखंड के जगतसिंह जंगली, सच्चिदानंद भारती और गुजरात के मनसुख भाई पटेल के काम को सराहा। राजस्थान की सूखी नदी के सदानीरा होने का भी एक पंक्ति में जिक्र किया। मनसुख भाई पटेल का काम, खारे पानी के इलाके में मीठे पानी के इंतजाम की स्वयंसेवी व स्वावलंबी काम की दास्तान है। जगतसिंह 'जंगली' ने छोटे से पहाड़ को अकेले जुनून के दम पर हरा–भरा कर दिखाया है। जंगल लगाने के जुनून ने ही उन्हें 'जंगली' उपनाम दिया है। पौड़ी गढ़वाल के उफैरखाल इलाके में सच्चिदानंद भारती का काम गवाह है कि यदि समाज चाहे तो, अपने पानी का इंतजाम खुद कर सकता है। यह प्रयास इसका भी गवाह है कि छोटी–छोटी जलसंचनाओं का संजाल, सूख गई नदी को जिंदा कर सकता है।

पंजाब में बाबा बलबीर सिंह सींचवाल द्वारा कालीबेंई नदी की प्रदूषण मुक्ति का प्रयास, कारसेवा के करिश्मे को सिद्ध करता है। राजस्थान के अलवर, जयपुर और करौली जिले में तरुण भारत संघ के साथ मिलकर ग्रामीणों द्वारा किए गये संगठित प्रयास, सात छोटी–छोटी नदियों के सदानीरा बनने की कहानी कहते हैं। एक ओर स्थानीय प्रयास से नदियों के पुनर्जीवन के प्रयासों की तारीफ करना और यह मानना कि जल संरक्षण के स्थानीय प्रयासों से देश के कम वर्षा वाले भू–भाग में भी नदियों को पुनर्जीवित किया जा सकता है, वहीं कम पानी की उपलब्धता वाले इलाके में विकल्प के रूप में दूसरे इलाके की नदियों को खींचकर लाने की योजना विरोधाभासी स्थिति है।

सैद्धांतिक प्रश्न यह है कि यदि जल संरक्षण के छोटे–छोटे काम करके नदियों को पानीदार बनाना संभव है और सरकार को ये प्रयास प्रेरक और दोहराये जाने लायक लगते हैं, तो नदियों को जोड़ने की जरूरत ही कहां रहती है?

पिछले एक दशक के दौरान कई वैज्ञानिक अध्ययनों से सिद्ध हो चुका है कि नदी जोड़ परियोजना बड़े पैमाने पर कर्ज और भौगोलिक बिगाड़ वाली साबित होगी। इसके व्यावहारिक अनुभवों को देखते हुए ही दुनिया के कई देशों ने इससे तौबा की है। भारत सरकार अब तक ऐसा एक भी अध्ययन नहीं पेश कर सकी है, जो कहता हो कि 'नदी जोड़ परियोजना' लाभ की तुलना में कम नुकसानदेह सिद्ध होगी। हकीकत में यह परियोजना लाभ की तुलना में कई गुना नुकसान करेगी और उसकी भरपाई कई पीढ़िया भी नहीं कर सकेंगी।

'जल मंथन' के दौरान जल संसाधन मंत्री ने कहा कि जो संस्तुतियां आप देंगे, मंत्रालय भारत जल सप्ताह–2015 से उन पर अमल शुरू कर देगा। गंगा मंथन के दौरान भी नदी जोड़, बांध और बैराजों को लेकर नीति तय करने की मांग उठी थी। इलाहाबाद से हल्दिया तक जल परिवहन के लिए गंगा में प्रस्तावित बैराजों को लेकर बिहार के गैर सरकारी संगठनों और राज्य के मुख्यमंत्री ने सरकार को अलग से आगाह किया है।

'जल मंथन' के दौरान नदी पुनर्जीवन से जुड़े समूह की रिपोर्ट प्रस्तुत करते हुए आशीष गौतम ने स्पष्ट संकेत दिया कि जल प्रवाहों को मर्जी के मुताबिक ढोकर ले जाना भारतीय संस्कृति नहीं है। क्या मंत्रालय ऐसी राय मानेगा अथवा जिन संस्तुतियों को अपने अनुकूल समझेगा, उन्हे ही दर्ज करेगा? हालांकि, नदियां किसी एक धर्म या वर्ग का विषय नहीं है। नदियों के साथ मर्यादित व्यवहार का दायित्व प्रत्येक प्राणी का कर्तव्य है। अतः सरकार को निर्णय लेना होगा कि वह मुनाफाखोर निवेशकों के पक्ष में कार्य करेगी अथवा मातृ सरीखी नदियों के पक्ष में? सरकार नदी किनारे निवेश बढ़ाने का काम करना चाहती है अथवा नदी में प्रवाह बढ़ाने का कार्य? वह पानी का बाजार बढ़ाना चाहती हैं अथवा भू–भंडार? इन सवालों का जवाब तलाशने में यदि देरी अथवा कोताही बरती गई, तो तय मानिए 'जलग्राम' जैसे अच्छे विचारों और कार्यों की कीर्ति भी एक दिन नष्ट हो जाएगी। ❑

देश में स्वर्ण सदुपयोग अभियान की है जरूरत

सोने का अधिक आयात देश के लिए कई आर्थिक खतरों का कारण बना हुआ है। पिछले पांच वर्षों में सोने के आयात में जितनी धनराशि खर्च की गई यदि उसकी तुलना पिछले वर्ष की विभिन्न तरह की बचतों में किए गए निवेश से करें तो कई विचारणीय प्रश्न खड़े हो जाते हैं। पिछले पांच वर्षों में किए गए सोने के आयात पर लगाए गए धन की राशि इस अवधि में देश की सभी बीमा कंपनियों को मिले कुल प्रीमियम से भी अधिक रही। इतना ही नहीं, सोने के आयात की राशि देश में शेयरों, म्युचुअल फंड में लगी राशि अथवा आवास क्षेत्र, छोटी बचत, भविष्य निधि, डाक घर बचत आदि की तुलना में कई गुना अधिक थी। निर्यात कम होने और आयात बढ़ने से देश के विदेशी मुद्रा भंडार पर असर पड़ रहा है।

■ **जयंतीलाल भंडारी**

हाल ही में प्रकाशित वर्ल्ड गोल्ड काउंसिल (डब्ल्यूजीसी) की रिपोर्ट 2014 में कहा गया है कि भारत में घरों और मंदिरों में करीब 22 हजार टन सोने का संचय है। डब्ल्यूजीसी ने भारत के लिए 2020 के दृष्टिकोण पत्र में यह भी कहा है कि यदि भारत सरकार द्वारा घरों और मंदिरों में संचित सोने के कुछ भाग को उत्पादक रूप दे दिया जाए तो भारत में उद्योगों के विकास, रोजगार बढ़ाने, प्रतिभाओं के कौशल विकास तथा आम आदमी के चेहरे पर मुस्कराहट का नया खुशनुमा परिदृश्य दिखाई दे सकता है। निश्चित रूप से देश के विकास का नया अध्याय लिख रही मोदी सरकार को घरों और मंदिरों में संचित अनुत्पादक सोने को अर्थव्यवस्था के काम में लगाए जाने के रणनीतिक कदम उठाने चाहिए। इसका इस्तेमाल देश के बुनियादी ढांचे, कारोबार विकास, रोजगार पैदा करने, कौशल विकास, निर्यात बढ़ाने और राजस्व अर्जन के लिए किए जाने की रणनीति बनाई जानी चाहिए। इसे देश के वित्तीय, आर्थिक और सामाजिक ढांचे का महत्वपूर्ण हिस्सा बनाया जाना चाहिए।

यह स्पष्ट है कि इस समय अर्थव्यवस्था को तेज गति देने के लिए संसाधनों की कमी है और इसी कारण बड़ी संख्या में लोग उद्योग–व्यवसाय में रोजगार संकट की पीड़ाओं का सामना करते हुए दिखाई दे रहे हैं। ऐसे में व्यवसायी तथा उद्यमियों के लिए सोने पर ऋण की आकर्षक योजनाएं बनाई जाएं तो इससे उद्योग–व्यवसाय को प्रोत्साहन मिलेगा। सोने के कारोबार से विदेशी मुद्रा की कमाई और बड़ी संख्या में रोजगार सृजन की रणनीति भी बनाई जानी चाहिए। इस समय देश से आठ अरब डॉलर के स्वर्ण आभूषणों का निर्यात किया जाता है और अब भारत को वर्ष 2020 तक इसका निर्यात पांच गुणा बढ़ाकर 40 अरब डॉलर तक पहुंचाने का लक्ष्य रखना चाहिए। इसके आधार पर भारत को समूचे सोने के कारोबार की श्रृंखला में 50 लाख रोजगार सृजन का भी लक्ष्य लेकर आगे बढ़ना चाहिए। यदि देश के सोने का उपयोग रोजगार बढ़ाने एवं कौशल विकास के लिए किया जाएगा तो देश की प्रतिभाएं देश को आर्थिक महाशक्ति बना सकती हैं।

सोने के निरंतर बढ़ते वैध–अवैध आयात का यह परिदृश्य बता रहा है कि भारत के अधिकांश बचतकर्ता सोने की तरफ अधिक आकर्षित होते रहे हैं। यही कारण है कि कच्चे तेल के बाद देश के आयात में सबसे बड़ी हिस्सेदारी सोने की बनी हुई हैं। वस्तुतः सोने के बड़े पैमाने पर आयात की देश की अर्थव्यवस्था को भारी कीमत चुकानी पड़ रही है।

वैश्वीकरण और निजीकरण के नए दौर में देश और दुनिया के उद्योग–कारोबार जगत के लिए नई बाजार जरूरतों के अनुरूप भारत की शिक्षित–प्रशिक्षित प्रतिभाओं की मांग बढ़ रही है, लेकिन देश में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा संस्थाओं की कमी और गरीब प्रतिभाशाली छात्रों के पास संसाधनों की कमी के कारण मांग के अनुरूप प्रतिभाओं की पूर्ति नहीं हो पा रही है। विश्व बैंक की रिपोर्ट के मुताबिक विकसित देशों और कई विकासशील देशों में वर्ष 2020 तक कामकाजी जनसंख्या की भारी कमी होगी। भारत की बढ़ी हुई आबादी मानव संसाधन के परिप्रेक्ष्य में आर्थिक वरदान सिद्ध हो सकती है। लेकिन यह कटु सत्य है कि सरकार की छतरी के नीचे उद्यमपरक मानव संसाधन तैयार करने वाले गुणवत्तापूर्ण शैक्षणिक संस्थाओं की संख्या बहुत कमी है और सरकार के लिए छलांग लगाकर बढ़ती हुई छात्र संख्या के लिए गुणवत्तापूर्ण शिक्षा और प्रशिक्षण के स्तर पर ठोस पहल संभव

नहीं है। इतना ही नहीं, निजी क्षेत्र में प्रोफेशनल शिक्षा के जो गिने–चुने संस्थान हैं वहां प्रवेश और ऊंची फीस की व्यवस्था दुष्कर कार्य है। ऐसे में देश के मंदिरों के ट्रस्टों के माध्यम से उनके संचित सोने का उपयोग अधिक से अधिक गुणवत्तापूर्ण शैक्षणिक संस्थाओं की स्थापना एवं प्रतिभाओं को तराशने में किया जाना चाहिए। चूंकि संसाधनों एवं धन की कमी से देश के करोड़ों लोग शिक्षा व स्वास्थ्य और अच्छे जीवनस्तर की बुनियादी जरूरतों की पूर्ति से बहुत दूर हैं, इसलिए घरों एवं मंदिरों में संचित किंतु अनुत्पादक दिखाई दे रहे सोने के उपयोग से देश के मानवीय चेहरे पर भी कुछ चमक के लिए प्रयास किए जाने चाहिए।

एक ओर जहां सोने को अर्थव्यवस्था के काम में लाए जाने के ठोस प्रयास हों, वहीं दूसरी ओर स्वर्ण आयात को नियंत्रित करने के भी रणनीतिक प्रयास होने चाहिए। यदि हम सोने की खरीदी का पिछला परिदृश्य देखें तो पाते हैं कि देश में छोटे–बड़े निवेशक सोने में निवेश को प्रतिफल के हिसाब से उपयुक्त मानते रहे हैं। इसीलिए बाजार में सोने की मांग बढ़ती गई है।

देश में वर्ष 2012 में 864 टन सोना आयात किया गया, जबकि 2013 में यह बढ़कर 975 टन हो गया। यद्यपि सरकार ने बढ़ते चालू खाते के घाटे पर अंकुश लगाने के लिए सोने पर आयात शुल्क बढ़ाकर 10 प्रतिशत कर दिया और रिजर्व बैंक ने इस पर सख्ती बढ़ाई है। इससे आयात में तेज वृद्धि नहीं हुई है लेकिन देश में अवैध रूप से सोना लाने की रफ्तार तेजी से बढ़ी है।

वर्ल्ड गोल्ड काउंसिल के मुताबिक वर्ष 2012 में देश में करीब 100 टन सोना अवैध रूप से लाया गया जो 2013 में दोगुना बढ़कर 200 टन हो गया है। इतना ही नहीं, वर्ष 2014 में भारत में 250 टन सोना अवैध रूप से आने का अनुमान है। गौरतलब है कि सोने के निरंतर बढ़ते वैध–अवैध आयात का यह परिदृश्य बता रहा है कि भारत के अधिकांश बचतकर्ता सोने की तरफ अधिक आकर्षित होते रहे हैं। यही कारण है कि कच्चे तेल के बाद देश के आयात में सबसे बड़ी हिस्सेदारी सोने की बनी हुई हैं। वस्तुतः सोने के बड़े पैमाने पर आयात की देश की अर्थव्यवस्था को भारी कीमत चुकानी पड़ रही है।

लोगों को यह समझाना होगा कि सोने में निवेश उत्पादक नहीं होता है। सोने के आयात को कम करने के ऐसे जन जागरूकता अभियान के साथ यह भी जरूरी है कि छोटी बचतों को आकर्षक बनाया जाए। सोने में निवेश करने वालों के कदम शेयर बाजार की ओर मोड़ने के लिए लोगों का शेयर बाजार में विश्वास बढ़ाना होगा।

सोने का अधिक आयात देश के लिए कई आर्थिक खतरों का कारण बना हुआ है। पिछले पांच वर्षों में सोने के आयात में जितनी धनराशि खर्च की गई यदि उसकी तुलना पिछले वर्ष की विभिन्न तरह की बचतों में किए गए निवेश से करें तो कई विचारणीय प्रश्न खड़े हो जाते हैं। पिछले पांच वर्षों में किए गए सोने के आयात पर लगाए गए धन की राशि इस अवधि में देश की सभी बीमा कंपनियों को मिले कुल प्रीमियम से भी अधिक रही। इतना ही नहीं, सोने के आयात की राशि देश में शेयरों, म्युचुअल फंड में लगी राशि अथवा आवास क्षेत्र, छोटी बचत, भविष्य निधि, डाक घर बचत आदि की तुलना में कई गुना अधिक थी। निर्यात कम होने और आयात बढ़ने से देश के विदेशी मुद्रा भंडार पर असर पड़ रहा है।

प्रतिवर्ष देश की जीडीपी का तीन प्रतिशत धन सोने के रूप में अनुत्पादक पूंजी में बदल रहा है और इससे विकास दर प्रभावित हो रही है। फिलहाल सोने की कीमतें घटने का जो परिदृश्य दिखाई दे रहा है उससे सोने के आयात में कमी होगी। लेकिन सोने की मांग घटाने के अन्य सार्थक प्रयास किए जाने भी जरूरी हैं। सोने की मांग घटाने के लिए लोगों के सामाजिक और सांस्कृतिक रुख में बदलाव लाना जरूरी है। लोगों को यह समझाना होगा कि सोने में निवेश उत्पादक नहीं होता है। सोने के आयात को कम करने के ऐसे जन–जागरूकता अभियान के साथ यह भी जरूरी है कि छोटी बचतों को आकर्षक बनाया जाए। सोने में निवेश करने वालों के कदम शेयर बाजार की ओर मोड़ने के लिए लोगों का शेयर बाजार में विश्वास बढ़ाना होगा। उम्मीद है कि मोदी सरकार जिस तरह से मेक इन इंडिया और स्वच्छ भारत जैसे अभियान शुरू कर रही है, उसी तरह वर्ल्ड गोल्ड काउंसिल के सुझावों के मद्देनजर संचित सोने के उपयोग के लिए नई रणनीति बनाकर स्वर्ण सदुपयोग अभियान चलाएगी। संचित सोने के सदुपयोग से देश की अर्थव्यवस्था और प्रतिभाएं आगे बढ़ेंगी। स्वास्थ्य, शिक्षा और अन्य नागरिक सुविधाओं में सुधार से आम आदमी के चेहरे पर भी कुछ मुस्कराहट आ सकेगी। संचित सोने का अधिकतम उत्पादक उपयोग आगामी वर्षों में भारत को दुनिया की आर्थिक महाशक्ति बनाने में सार्थक भूमिका निभा सकता है। ❑

भारत के रूख पर अमरीका की मुहर

यदि गरीबी रेखा के नीचे जीवनयापन करने वाले व्यक्ति के आजीविका की यह खाद्य सामग्री रियायती दरों पर नहीं मिलेंगी तो भारत समेत अन्य कई देशों की बड़ी आबादी भूख के चलते दम तोड़ देगी। भारत खाद्य सुरक्षा पर दी जाने वाली सब्सिडी को इसलिए नियंत्रित नहीं कर सकता क्योंकि खाद्य सुरक्षा का दायरा बढ़कर कुल आबादी का 67 प्रतिशत हो गया है। इसके तहत करीब 81 करोड़ लोगों को रियायती दर पर अनाज देना है। अभी तक सालाना 85 हजार करोड़ रपए खाद्य सब्सिडी पर दिए जा रहे थे। खाद्य सुरक्षा कानून लागू होने के बाद यह सब्सिडी बढ़कर 1.24 लाख करोड़ रुपए हो चुकी है।

■ प्रमोद भार्गव

विश्व व्यापार संगठन के विश्व व्यापार सुविधा नियमों में सुधार के सिलसिले में भारत का कठोर रुख सही दिशा में बढ़ाया गया कदम साबित हुआ। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की दृढ़ता के चलते व्यापार सुगमता करार (टीएफए) पर अमेरिका ने नरम रुख अपना लिया है। उसने खाद्यान्न भंडारण के मुद्दे पर भारत के प्रस्ताव का समर्थन करने पर सहमति दे दी है। अमेरिका के इस समर्थन से दोनों देशों के बीच करार पर जारी गतिरोध अब खत्म हो जाएगा। इस पहल से विश्व व्यापार संगठन में टीएफए के अमल का रास्ता भी खुल जाएगा।

याद रहे कि इसी साल जुलाई में मोदी ने टीएफए के क्रियान्वयन से हाथ खींचकर दुनिया को चौंका दिया था। इस करार की सबसे महत्वपूर्ण शर्त थी कि संगठन का कोई भी सदस्य देश अपने यहां पैदा होने वाले खाद्य पदार्थों के मूल्य का 10 प्रतिशत से ज्यादा अनुदान खाद्य सुरक्षा पर नहीं दे सकता। जबकि भारत में नए खाद्य सुरक्षा कानून के तहत देश की 67 प्रतिशत आबादी खाद्य सुरक्षा के दायरे में आ गई है। इसके लिए बतौर सब्सिडी जिस धनराशि की जरूरत पड़ेगी वह सकल फसल उत्पाद मूल्य के 10 फीसद से कहीं ज्यादा बैठती। इस लिहाज से इस मुद्दे पर मोदी का 'अंगद के पांव' की तरह अडिग बने रहना जरूरी था। जेनेवा में भारत पर अमेरिका, यूरोपीय संघ और ऑस्ट्रेलिया का दबाव था कि इन देशों के व्यापारिक हितों के लिए भारत अपने गरीबों के हितों की बलि चढ़ा दे। विकसित देश चाहते थे कि विकासशील देश समुचित व्यापार अनुबंध की सभी शर्तों को जस का तस मानें। जबकि इस अनुबंध की खाद्य सुरक्षा संबंधी शर्त भारत

के हितों के विपरीत है। दिसम्बर 2013 में भी इन्हीं विषयों को लेकर इंडोनेशिया के बाली शहर में डब्ल्यूटीओ की बैठक हुई थी, तब पूर्व वाणिज्य एवं उद्योग मंत्री आनंद शर्मा ने भी इस प्रस्ताव को खारिज कर दिया था।

दरअसल, दुनिया के विकासशील देशों की खाद्य सुरक्षा की सब्सिडी को नियंत्रित करने की पृष्ठभूमि में विकसित देश हैं। इसके उलट जी–33 भारत समेत 46 देशों का ऐसा समूह है जो अनाज की सरकारी खरीद और गरीब व वंचित समूह को खाद्य सहायता देने के अधिकार के मुद्दे पर अडिग है। विकसित देश चाहते हैं कि भारत जैसे विकासशील देश अपनी खाद्य सब्सिडी मसलन सार्वजनिक वितरण प्रणाली के जरिए दी जाने वाली सरकारी इमदाद को मौजूदा नियमों के दायरे में रखें। यानी सब्सिडी कुल कृषि उत्पाद मूल्य के 10 प्रतिशत के दायरे तक सीमित

रहे। इसके लिए विकसित देश अंतरिम शांति उपबंध के तहत चार साल की मोहलत देना चाहते थे। इसके बाद यदि सब्सिडी की सीमा 10 प्रतिशत के ऊपर निकलती तो इसे टीएफए की शर्तों का उल्लंघन माना जाता और शर्त तोड़ने वाले देश पर जुर्माना लगाया जाता। दरअसल, इस सीमा का निर्धारण 1986–88 की अंतरराष्ट्रीय कीमतों के आधार पर किया गया था। इन बीते ढाई दशक में महंगाई ने कई गुना छलांग लगाई है। इसलिए इस सीमा का भी पुनर्निर्धारण जरूरी है। यही वह दौर रहा है जब भूमंडलीय आर्थिक उदारवाद की अवधारणा ने बहुत कम समय में ही यह प्रमाणित कर दिया कि वह उपभोक्तावाद को बढ़ावा देकर अधिकतम मुनाफा बटोरने का उपाय भर है। टीएफए की सब्सिडी संबंधी शर्त, औद्योगिक देशों और उनकी बहुराष्ट्रीय कंपनियों के इसी मुनाफे में और इजाफा करने की दृष्टि से लगाई गई है ताकि लाचार आदमी के आजीविका के संसाधनों को दरकिनार कर उपभोगवादी वस्तुएं खपाई जा सकें।

नव–उदारवाद की ऐसी ही एकतरफा व विरोधाभासी नीतियों का नतीजा है कि अमीर और गरीब के बीच खाई लगातार बढ़ती जा रही है। दरअसल, देशी व विदेशी उद्योगपति पूंजी का निवेश दो ही क्षेत्रों में करते हैं, एक उपभोक्तावादी उपकरणों के निर्माण और वितरण में, दूसरे प्राकृतिक संपदा के दोहन में। यही दो क्षेत्र धन उत्सर्जन के अहम स्रोत हैं। उदारवादी अर्थव्यस्था का मूल है कि भूखी आबादी के लिए भोजन के उपाय करने की बजाय, विकासशील देश पूंजी का केंद्रीयकरण एक निश्चित आबादी पर करें जिससे उसकी खरीद क्षमता में निरंतर इजाफा होता रहे। छठा वेतनमान मनमोहन सिंह सरकार ने इसी उदारवादी अर्थव्यस्था के पोषण के लिए लागू किया था। जाहिर है, अंततः यह व्यवस्था सीमित मध्यवर्ग और उच्चवर्ग को ही पोषित करने वाली है। लिहाजा गरीब देशों की रियायतों से जुड़ी लोक कल्याणकारी योजनाएं डब्ल्यूटीओ की आंखों में खटकती रहती हैं। लेकिन यह पहली मर्तबा है जब नरेंद्र मोदी की चुनौती के चलते अमेरिका की चौधराहट पर अंकुश लगा है।

भारत जैसे विकासशील देश अपनी आबादी के कमजोर तबके के लोगों की खाद्य सुरक्षा जैसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए बड़ी मात्रा में समर्थन मूल्य पर अनाज की सरकारी खरीद करते हैं। फिर इसे रियायती दरों पर पीडीएस के जरिए बेचा जाता है। यहां तक कि एक रुपए किलो गेहूं और दो रपए किलो चावल जरूरतमंद लोगों को दिए जाते हैं। कुछ राज्य सरकारें तो आयोडीनयुक्त नमक भी लोगों को रियायती दर पर दे रही हैं।

ऐसे में यदि गरीबी रेखा के नीचे जीवनयापन करने वाले व्यक्ति के आजीविका की यह खाद्य सामग्री रियायती दरों पर नहीं मिलेंगी तो भारत समेत अन्य कई देशों की बड़ी आबादी भूख के चलते दम तोड़ देगी। भारत खाद्य सुरक्षा पर दी जाने वाली सब्सिडी को इसलिए नियंत्रित नहीं कर सकता क्योंकि खाद्य सुरक्षा का दायरा बढ़कर कुल आबादी का 67 प्रतिशत हो गया है। इसके तहत करीब 81 करोड़ लोगों को रियायती दर पर अनाज देना है। अभी तक सालाना 85 हजार करोड़ रपए खाद्य सब्सिडी पर दिए जा रहे थे। खाद्य सुरक्षा कानून लागू होने के बाद यह सब्सिडी बढ़कर 1.24 लाख करोड़ रुपए हो चुकी है। इसे पूंजीवाद के समर्थक अर्थशास्त्री बड़ा राजकोषीय घाटा मानते हैं। जबकि 2014–15 के अंतरिम बजट में ही औद्योगिक घरानों को लाभ पहुंचाने की दृष्टि से मनमोहन सरकार ने 5.73 लाख करोड़ रपए की छूट दी थी। जबकि भारत का वर्तमान में वित्तीय घाटा 5.25 लाख करोड़ रुपए है।

जाहिर है, इस घाटे की पूर्ति उद्योग समूहों को दी गई छूट से आसानी से की जा सकती थी, लिहाजा घाटे का रोना फिजूल है। दूसरी तरफ भाजपा ने अपने घोषणा पत्र में फसलों के समर्थन मूल्य में डेढ़ गुना वृद्धि करने की बात कही है। यदि मोदी सरकार इस वादे पर अमल करती है तो स्वाभाविक है, सब्सिडी खर्च और बढ़ेगा। सरकार को इस वादे पर इसलिए अमल करना जरूरी है क्योंकि उसके कहे पर ऐतबार कर लोगों ने उसे जबरदस्त बहुमत दिया है। ऐसे में किसान और गरीब के हितों को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता।

शायद इसीलिए सरकार टीएफए पर अडिग बनी रही थी और अब उसके इस रुख का समर्थन अमेरिका ने भी कर दिया है। क्यूबा, वेनेजुएला और बोलिविया भारत के साथ पहले से ही थे। जेनेवा में भारत के सख्त रवैये से अमेरिका की चौधराहट को जबरदस्त धक्का लगा था। दरअसल, डब्ल्यूटीओ का विधान बहुमत को मान्यता नहीं देता। इसमें प्रावधान है कि किसी भी एक सदस्य देश की आपत्ति करार को यथास्थिति में बनाए रखने के लिए पर्याप्त है। इसलिए अमेरिका को कहना पड़ा था कि डब्ल्यूटीओ संकट के कगार पर है। पर अब भारत के रुख पर अमेरिका की सहमति से डब्लूटीओ और टीएफए संकट मुक्त हो गए हैं। ❑

समाचार परिक्रमा

प्रत्येक भारतीय का होगा डिजिटल लॉकर

आने वाले दिनों में अब सरकार डिजिटल इंडिया मिशन के तहत सभी देशवासियों को डिजिटल लॉकर उपलब्ध कराएगी जहां संबंधित व्यक्ति के सभी प्रमाण पत्र सुरक्षित रखे जाएंगे। इलेक्ट्रानिक्स एवं सूचना प्रौद्योगिकी विभाग के सचिव आरएस शर्मा के अनुसार हार्डवेयर क्षेत्र की प्रमुख कंपनी इंटेल इंडिया द्वारा सरकार के डिजिटल इंडिया मिशन में सहयोग के उद्देश्य से डिजिटल स्किल फार इंडिया कार्यक्रम की शुरुआत एवं भारतीय चुनौती के लिए नवाचार की घोषणा के बाद कहा कि सभी देशवासियों के लिए डिजिटल लाकर बनाने का निर्णय लिया गया है ताकि किसी भी व्यक्ति को जरूरत पड़ने पर प्रमाणपत्र की मूल प्रति पेश करने की जरूरत नहीं पड़े और जिस प्रमाण पत्र की आवश्यकता होगी उसे लॉकर से निकलाकर उपयोग किया जा सकेगा। उन्होंने कहा कि डिजिटल लॉकर की व्यवस्था शुरू करने में कुछ समय लगेगा क्योंकि देश के सभी नागरिक के औसतन पांच से छह प्रमाण पत्र होंगे और उन सभी का डिजिटलीकरण करके संग्रहित करना आसान काम नहीं है। ❑

नशे के कारोबार पर लगे अंकुश

देश की सर्वोच्च अदालत ने देश के नौनिहालों में तम्बाकू, ड्रग्स, भांग, सूंघने वाले मादक पदार्थों और नशे की खतरे की हद तक बढ़ रही लत पर गंभीर चिंता व्यक्त करते हुए केन्द्र सरकार, राज्य सरकारों और केन्द्र शासित प्रदेशों को नोटिस जारी कर जबाव मांगा है। मुख्य न्यायाधीश जस्टिस एच. एल. दत्तू की पीठ ने यह नोटिस हाल में नोबेल पुरस्कार से सम्मानित 'बचपन बचाओ आंदोलन' के पुरोधा कैलाश सत्यार्थी की जनहित याचिका पर जारी किया है। आज देश में करोड़ों रुपये कीमत के नशीले पदार्थों की बरामदगी रोजमर्रा की बात हो गई है। इसके बावजूद इस कारोबार पर अंकुश नहीं लग पा रहा है। देश में 44 करोड़ बच्चों में 24 करोड़ किशोरवय हैं जो कुल आबादी का 24 प्रतिशत हैं।

बचपन बचाओ आंदोलन के कैलाश सत्यार्थी की याचिका की मानें तो पूर्वोत्तर राज्य मेघालय, नगालैंड, सिक्किम और उत्तराखंड में स्थिति सबसे ज्यादा खराब है। वहां क्रमशः 96, 95, 93 और 90 प्रतिशत किशोर तम्बाकू के लती हैं। दिल्ली में यह प्रतिशत 69 है। शराब पीने वाले किशोरों की तादाद सबसे ज्यादा कर्नाटक में 88 प्रतिशत है। आंध्र का नम्बर दूसरा है जबकि हरियाणा और चंडीगढ़ में यह आंकड़ा 80 प्रतिशत है। दिल्ली में यह तादाद 23 प्रतिशत ही है। भांग के आदी किशोरों की तादाद सबसे ज्यादा उत्तराखंड में (70 फीसद) है। हरियाणा में यह 63 फीसद और दिल्ली में 34 फीसद ही है। इनहेलैंट के मामले में मध्य प्रदेश का प्रतिशत 66 और हरियाणा का 46 है जबकि उत्तराखंड में यह मात्र सात प्रतिशत है। हेरोइन के सबसे ज्यादा 19 प्रतिशत आदी युवक पंजाब में हैं जबकि दिल्ली और यूपी में यह आंकड़ा 10 प्रतिशत है। ❑

सबसे बड़ा एफडीआई स्रोत बना मारीशस

मारीशस फिर से भारत में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश का सबसे बड़ा स्रोत बना है। अप्रैल–सितम्बर अवधि में इस देश के जरिए 4.19 अरब डालर का एफडीआई भारत आया। आंकड़ों के मुताबिक इस अवधि में सिंगापुर से विदेश निवेश प्रवाह 2.41 अरब डालर, नीदरलैंड से 1.95 अरब डालर और अमेरिका से 1.19 अरब डालर रहा है। वहीं ब्रिटेन से सितम्बर तक 84. 2 करोड़ डालर प्रत्यक्ष विदेशी निवेश भारत आया। वर्ष 2013–14 में सिंगापुर ने एफडीआई के मामले में मारीशस को पीछे छोड़ दिया था और कुल प्रत्यक्ष विदेशी निवेश में उसकी हिस्सेदारी करीब 25 प्रतिशत रही थी। बीते वित्त वर्ष के दौरान भारत में सिंगापुर से 5.98 अरब डालर एफडीआई आया जबकि मारीशस से 4.85 अरब डालर का एफडीआई आया था। ❑

देश में बढ़ा रहा है सोना आयात

बढ़ते सोना आयात के कारण चालू खाते के घाटे को काबू में रखने के लिए प्रयासरत सरकार के लिए सोना आयात चिंता का विषय बनता जा रहा है। आंकड़ों के अनुसार अक्टूबर में सोना आयात पिछले साल की तुलना में 280.39 प्रतिशत बढ़कर चार अरब 17 करोड़ 80 लाख डालर पर पहुंच गया। इस अवधि में देश का कुल निर्यात 5.04 प्रतिशत घटकर 26 अरब डालर रह गया, जबकि आयात 3.62 प्रतिशत बढ़ गया जिससे इस दौरान देश के व्यापार घाटे में वृद्धि दर्ज की गई। ❑

देश में 500 कर्जदार कंपनियों संकट में

इंडिया रेटिंग्स की एक रिपोर्ट के अनुसार देश में 500 बड़ी कर्जदार कंपनियों में से कई कंपनियों को धन जुटाने में बड़ी चुनौती हो रही है। रिपोर्ट में कहा गया है कि इन कंपनियों को खुद को कर्जमुक्त करने के लिए 7,000 अरब रपए या 114 अरब डालर तथा तीन साल के वक्त की जरूरत है। इसके अतिरिक्त रिपोर्ट में कहा गया है कि यदि कर्ज से मुक्ति के लिए शेयरपूंजी डालने का रास्ता अपनाना हो तो शीर्ष 500 में से 262 कंपनियों को न्यूनतम 114 अरब डालर की इक्विटी निवेश की जरूरत होगी। इसमें कहा गया है कि लेकिन इतनी राशि जुटाना एक बड़ी चुनौती है। इंडिया रेटिंग्स के वरिष्ठ निदेशक वित्तीय सेवाएं दीप एन. मुखर्जी ने एक नोट में कहा कि यदि इन कंपनियों को अपने शेयर पूंजी और कर्ज के अनुपात को उचित स्तर पर लाना है, तो उन्हें इस प्रक्रि या को पूरा करने में तीन साल का समय लगेगा। लेकिन यह तभी हो सकता है जबकि उनका ऋण का बोझ 2013–14 के स्तर से आगे न बढ़े। ❑

साल के अंत तक 30 करोड़ इंटरनेट उपभोक्ता

मोबाइल फोन पर इंटरनेट के बढ़ते उपयोग के चलते इस साल के अंत तक भारत में इंटरनेट उपयोक्ताओं की संख्या 30.2 करोड़ का स्तर छू जाने की संभावना है। इससे भारत अमेरिका को पछाड़ते हुए विश्व का दूसरा सबसे बड़ा इंटरनेट बाजार बन जाएगा।

इंटरनेट एंड मोबाइल एसोसिएशन आफ इंडिया (आईएएमएआई) और आईएमआरबी इंटरनेशनल की एक रिपोर्ट के अनुसार इस साल के अंत तक भारत में इंटरनेट उपभोक्ताओं की संख्या 30.2 करोड़ तक पहुंच जाएगी। जो पिछले साल दिसम्बर में 21.3 करोड़ थी। रिपोर्ट में बताया गया कि जून, 2015 तक देश में इंटरनेट उपयोक्ताओं की संख्या बढ़कर 35.4 करोड़ पर पहुंचने का अनुमान है। वर्तमान में, भारत इंटरनेट उपयोक्ताओं की संख्या के लिहाज से विश्व का तीसरा सबसे बड़ा देश है। वर्तमान में, 60 करोड़ से अधिक इंटरनेट उपयोक्ताओं के साथ चीन पहले पायदान पर है, जबकि 27.9 करोड़ उपयोक्ताओं के साथ अमेरिका दूसरे पायदान पर है। ❑

निवेश आकर्षित करने के मामले में भारत नंबर दो पर

नियंत्रण वित्तीय सेवा कंपनी एचएसबीसी की एक रपट के अनुसार विदेशी संस्थागत निवेशकों ने नवम्बर में एशियाई इक्विटी बाजार के प्रति भरोसा जताते हुए इस क्षेत्र में अब तक 5.3 अरब डालर का निवेश किया है। जिसमें से भारत में 1.4 अरब डालर का निवेश किया गया। वित्तीय सेवा क्षेत्र की प्रमुख कंपनी, एचएसबीसी के मुताबिक लगातार दो महीने की बिकवाली के बाद विदेशी संस्थागत निवेशकों ने एशियाई शेयर बाजारों के प्रति अपना भरोसा जताया और सभी बाजारों में नवम्बर के दौरान पूंजी प्रवाह हुआ। एशियाई अर्थव्यवस्थाओं में चीन सबसे लोकप्रिय बाजार के तौर पर शीर्ष पर रहा और भारत दूसरे जबकि थाईलैंड तीसरे स्थान पर रहा। ❑

भारतीय खरीद रहे अमेरिका में प्रोपर्टी

यूएस नेशनल एसोसिएशन आफ रीयल्टर्स की रिपोर्ट के अनुसार भारतीय खरीदारों ने मार्च में समाप्त एक साल की अवधि में अमेरिका में 5.8 अरब डालर मूल्य की आवासीय संपत्तियों की खरीद की है। भारतीयों ने इस तरह के सौदे पर औसतन 4,59,028 डालर खर्च किए। रिपोर्ट में कहा गया है कि भारतीयों ने लास एंजिल्स, लास वेगास, शिकागो, डलास और न्यूयार्क जैसे शहरों में संपत्तियों की खरीदी है। जेएलएल के चेयरमैन एवं कंट्री प्रमुख अनुज पुरी के अनुसार यह निश्चित रूप से रोचक तथ्य है। अमेरिकी नागरिकता हासिल करने वाले और वहां बस चुके ऊंची धन–संपदा वाले भारतीयों के लिए अमेरिका में संपत्तियों में निवेश करने की कई वजहें हैं।' पुरी ने कहा कि अमेरिका में काफी अपार्टमेंट इस समय संस्थागत निवेशकों के पास हैं, जिन्होंने इसे संकट के समय संकटग्रस्त लोगों से खरीदा था। ❑

राजकोषीय घाटा बजट अनुमान का 90 प्रतिशत

राजकोषीय घाटा अक्टूबर के अंत तक 2014–15 के लिए बजट अनुमान का 89.6 प्रतिशत का स्तर छूते हुए 4.75 लाख करोड़ रपए को पार कर गया है। बीते वित्त वर्ष की इसी अवधि में राजकोषीय घाटा बजट अनुमान का 84.4 प्रतिशत था। चालू वित्त वर्ष के अप्रैल–अक्टूबर के दौरान शुद्ध कर प्राप्तियां 3.68 लाख करोड़ रपए या बजट अनुमान का 37.7 प्रतिशत रहा। उल्लेखनीय है कि सब्सिडी बिल बढ़ने कारण सरकार पर भारी दबाव है। ❑

चीन में गरीबों की संख्या 9.2 करोड़

देश में चीन के विकास मॉडल पर काम करने की बात की जा रही है परन्तु हाल ही में चीन के गरीबी उन्मूलन एवं विकास कार्यालय ने चीन में 9.2 करोड़ गरीब लोगों की संख्या बताई है। रिपोर्ट के अनुसार दुनिया के सबसे बड़ी आबादी और दूसरे सबसे बड़े देश चीन में 1. 28 लाख पिछड़े गांवों की पहचान की गई है। इसके अलावा चीन में 9.2 करोड़ लोग गरीबी में जी रहे है। लीयु योंगफु (गरीबी उन्मूलन एवं विकास मामले कार्यालय के प्रमुख) ने कहा है कि चीन में गरीबी तो कम हुई है पर देश में आज भी काफी गरीब लोग अपने गुजर–बसर कर रहे है। कार्यालय के उपमंत्री झेंग वेंकई ने कहा है कि 8.2 करोड़ लोग चीन के एक डॉलर प्रति व्यक्ति फार्मूले के तहत आधिकारिक रूप से गरीबी रेखा के नीचे हैं। लेकिन यदि विश्व बैंक के सवा डॉलर के मानदंड को पैमाना बनाए तो यह संख्या 20 करोड़ तक पहुंच जाएगी। उन्होंने कहा था कि आर्थिक वृद्धि के बावजूद गरीबी अभी भी एक बड़ी समस्या हुई है। ❑

बच्चों में कुपोषण से जीडीपी को 3% का नुकसान

विश्व बैंक की एक रिपोर्ट में कहा गया है कि भारत देश में 2 साल तक के बच्चों को पर्याप्त पौष्टिक भोजन नहीं मिलने के कारण हर साल देश के सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) को 2–3 प्रतिशत का नुकसान हो रहा है। विश्व बैंक की रपट ने यह निष्कर्ष 'भारत में पोषण' के आधार पर बताया है। इसके अनुसार कुपोषण का प्रत्यक्ष– अप्रत्यक्ष आर्थिक नुकसान काफी अधिक है। प्रत्यक्ष उत्पादकता नुकसान आजीवन व्यक्तिगत आय के 10 प्रतिशत से अधिक आंका गया है जबकि इससे जीडीपी को होने वाला नुकसान 2 से 3 प्रतिशत है। इसके अनुसार, 'शुरुआती जीवन में पर्याप्त विकास नहीं होने से मानव पूंजी को दीर्घकालिक व स्थायी नुकसान होता है।' इसके अलावा विटामिन व खनिजों से जुड़ी कमियों के कारण ही भारतीय जीडीपी को 12 अरब डालर से अधिक का नुकसान होता है। ❑

विदेशी निवेशकों ने शेयर बाजार में लगाए 1.55 अरब डालर

एक आंकड़ों के अनुसार विदेशी निवेशकों ने बीते महीने तक शेयर बाजार में 1.55 अरब डालर के निवेश किया है और इस साल की शुरुआत से लेकर अब तक उनका कुल निवेश 15 अरब डालर से अधिक पहुंच गया है। आंकड़ों के मुताबिक, विदेशी निवेशकों ने तीन से 14 नवम्बर के बीच 42,866 करोड़ रपए मूल्य के शेयर खरीदे, जबकि इस दौरान उन्होंने 33,352 करोड़ रपए मूल्य के शेयर बेचे जिससे उनका शुद्ध निवेश 1.55 अरब डालर रहा। बाजार विश्लेषकों ने कहा कि विदेशी निवेशक (विदेशी संस्थागत निवेशक, विदेशी पोर्टफोलियो निवेशकों के उप खाते) सरकार के सुधार एजेंडा पर दांव लगा रहे हैं। लैडरअप वेल्थ मैनेजमेंट के प्रबंध निदेशक राघवेंद्र नाथ के अनुसार, 'शेयर बाजार में निवेश प्रवाह निरंतर मजबूत बना हुआ है। उन्होंने है कि अगले दो–तीन साल में भारत की बुनियादी स्थिति में सुधार देखने को मिलेगा। ❑

सबसे ज्यादा छुट्टी लेते है दिल्ली के लोग

एक निजी संस्था एक्सपेडिया के अनुसार देश की राजधानी दिल्ली के लोग छुट्टी के मामले में सबसे आगे है। यहां 99 प्रतिशत लोग एक बार छुट्टी से लौटने के बाद फिर एक अगली छुट्टियों की योजना बना लेते है। दूसरी और मुंबई के लोग सबसे कम छुट्टियां लेते है।

यह सर्वेक्षण पांच शहरों पर किया गया था। सर्वेक्षण के अनुसार कार्य व जीवन का संतुलन बिठाने में छुट्टियां काफी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। परंतु मुंबई के लोग छुट्टी लेकर घर पर आराम करने के बजाय दफ्तर में काम करना ज्यादा आनंद महसूस करते है। मुंबई के लोग साल में मिलने वाली छुट्टियां का इस्तेमाल भी काफी कम करते है। ❑

सबसे ज्यादा गुलाम अब भी भारत में

आस्ट्रेलिया की 'वाक फ्री फाउंडेशन' की ओर से प्रकाशित रिपोर्ट नियंत्रण दासता सूचकांक–2014 के अनुसार पूरे विश्व में आधुनिक दौर की दासता का सामना कर रहे लोगों की संख्या करीब 3.58 करोड़ है और इनमें से 45 प्रतिशत भारत एवं पाकिस्तान में हैं। रिपोर्ट के अनुसार एशिया में 2.35 करोड़ लोग आधुनिक दौर की दासता की चंगुल से घिरे हैं। साथ ही इस रिपोर्ट में बताया गया है कि इनमें से 1.42 करोड़ भारत और 20.5 लाख लोग पाकिस्तान में हैं। इन दोनों देशों में नियंत्रण संख्या का 45 प्रतिशत आंकड़ा है। रिपोर्ट में कहा गया है कि लोग मानव तस्करी, जबरन मजदूरी, कर्ज की मजबूरी, जबरन शादी अथवा व्यावसायिक यौन उत्पीड़न के रूप में दासता का सामना कर रहे हैं। ❑

दुनिया को भारत की देन

भारत को साधु–संतों का देश कहकर अक्सर हमारी वैज्ञानिक उपलब्धियों को नजरअंदाज कर दिया जाता है। कदाचित भारतवासियसों को भी अपने अतीत की क्षमताओं और शक्ति का ज्ञान नहीं है। चिकित्सा, धातुकर्म, निर्माण एवं आरम्भिक नौका निर्माण के क्षेत्रों में प्राचीन भारत और मध्यकाल में भारतीयों को विविध कुशलताएं प्राप्त थीं।

■ निरंकार सिंह

धर्म, दर्शन, कला और ज्ञान–विज्ञान के विविध क्षेत्रों में भी भारत शताब्दियों तक विश्व के मानचित्र पर चमकता रहा है। दुनिया भर के कोने–कोने से छात्र तक्षशिला और नालंदा विद्याध्ययन के लिए आते थे। ताइग्रेयूफ्रेतिस, नील और सिंधु नदी की घाटियों ने जिन नागरिक सभ्यताओं की बुनियाद डाली, उनका इतिहास मात्र पांच हजार वर्ष पुराना है। इस बात के अनेक प्रमाण हैं कि भारत की सभ्यता इससे कहीं अधिक पुरानी है, क्योंकि सिंधु घाटी की सभ्यता, सभ्यता के शैशवकाल से हमारा परिचय न कराकर उसके चरमोत्कर्ष से परिचय कराती है। इसलिये भारतीय विज्ञान का प्राचीनतम इतिहास सुदूर भूतकाल के गर्भ में समाया हुआ है। यूनान, मिश्र तथा यूरोप के दूसरे देशों की सभ्यता से हमारी सभ्यता कहीं अधिक पुरानी है। भारत ही दुनिया का वह पहला देश है जहां सबसे पहले खेती–बारी का विकास हुआ और पशुओं की सहायता से खाद्यान्न का उत्पादन करके पौष्टिक आहार का आविष्कार किया गया। दुनिया के अन्य देश जब अंधकार में भटक रहे थे उस समय (पाषाण युग में) भारत की सिन्धु घाटी में विकसित हड़प्पा संस्कृति का विकास हो चुका था। इसी सभ्यता ने दुनिया को आधुनिक नगर नियोजन की कला सिखायी। जहाजरानी का भी विकास भी सिन्धु घाटी की सभ्यता ने ही किया था। लेकिन भारत को साधु–संतों का देश कहकर अक्सर हमारी वैज्ञानिक उपलब्धियों को नजरअंदाज कर दिया जाता है। कदाचित भारतवासियसों को भी अपने अतीत की क्षमताओं और शक्ति का ज्ञान नहीं है। चिकित्सा, धातुकर्म, निर्माण एवं आरम्भिक नौका निर्माण के क्षेत्रों में प्राचीन भारत और मध्यकाल में भारतीयों को विविध कुशलताएं प्राप्त थीं।

यूनान, मिश्र तथा यूरोप के दूसरे देशों की सभ्यता से हमारी सभ्यता कहीं अधिक पुरानी है। भारत ही दुनिया का वह पहला देश है जहां सबसे पहले खेती–बारी का विकास हुआ और पशुओं की सहायता से खाद्यान्न का उत्पादन करके पौष्टिक आहार का आविष्कार किया गया। दुनिया के अन्य देश जब अंधकार में भटक रहे थे उस समय (पाषाण युग में) भारत की सिन्धु घाटी में विकसित हड़प्पा संस्कृति का विकास हो चुका था।

हमारी भव्य और उत्कृष्ट मूर्तियों में ताजमहल, कुतुबमीनार जैसे चिरस्थायी विलक्षण स्तम्भ हैं जिनके निर्माण के लिए जटिल मानवीय कुशलताओं एवं पशु शक्ति का उपयोग किया गया है। **धातु शोधन कला में भी भारत के शिल्पी बहुत निपुण थे। ईसा से 326 वर्ष पूर्व जब सिकन्दर ने भारत पर हमला किया था तब तक उत्तरी भारत के सभी राज्यों में इस्पात की वस्तुओं का निर्माण होने लगा था। दिल्ली में कुतुबमीनार के पास लोहे का स्तम्भ अति उच्च कोटि के इस्पात उत्पादन की क्षमता का ज्वलन्त उदाहरण है।** आज के धातु विशेषज्ञों के लिए भी यह हैरानी का विषय है कि मोर्चा न लगने वाले इस उत्तम कोटि के इस्पात का निर्माण और इतने बड़े आकार का स्तम्भ उस समय कैसे तैयार किया गया होगा।

विश्व का पहला विश्वविद्यालय ईसा से 700 वर्ष पूर्व तक्षशिला में स्थापित हुआ था। दूसरा विश्वविद्यालय ईसा से 400 वर्ष पूर्व नालंदा में स्थापित हुआ था। इन विश्वविद्यालयों को शिक्षा जगत में भारत का महान योगदान माना जाता है। ईसा से 600 वर्ष पहले सुश्रुत ने शल्य चिकित्सा की नींव रखी थी। अब से लगभग दो ढाई हजार वर्ष पूर्व गणित, ज्योतिष, रसायन, दर्शन, चिकित्सा तथा अन्य विज्ञानों के प्रकाण्ड विद्वान इस बसुधा पर अवतीर्ण हुए थे। इनमें कणाद, आर्यभट्ट, वराहमिहिर, भास्कराचार्य, नागार्जुन, बाणभट्ट तथा चरक एवं सुश्रुत

आदि के नाम गिनाये जा सकते हैं। सदियों की गुलामी ने हमारे साहित्य को नष्ट–भ्रष्ट कर दिया और अनेक कारणों से इस प्राचीन भारतीय विज्ञान साहित्य का क्रमबद्ध इतिहास अप्राप्य है। परन्तु अनेक प्राचीन ग्रन्थों (वेद, पुराण, मनुस्मृति से लेकर अन्य कई ग्रन्थों में) उल्लिखित असंख्य विवरणों से यह स्पष्ट है कि प्राचीनकाल में भारत विज्ञान के क्षेत्र में उच्चतम शिखर पर था। हमारे देश के स्वर्णकाल का जो साहित्य अप्राप्य है अथवा अन्धकार में है, उसकी खोज करना आवश्यक है। इस साम्रगी का प्रकाश में आना भारतीय विज्ञान के विकास के लिए आवश्यक है। प्राचीन भारतीयों के गणित तथा ज्योतिष से सम्बन्धित ज्ञान को तो सबने मुक्तकण्ठ से सराहा हैं। मेकडानेल्ड ने अपने एक ग्रन्थ में लिखा है कि विज्ञान में यूरोप भारत का बहुत ऋणी है। उदाहरणार्थ सबसे पहले अंकगणित को लीजिए। अंकगणित भारतीयों के मस्तिष्क की उपज है और भारतीयों द्वारा आविष्कृत अंक आज संसार भर में काम में लाये जाते हैं। इन अंकों के आधार पर निर्मित दश्मलब पद्धति ने गणित–विज्ञान पर जो प्रभाव डाला है वह अवर्णनीय है। आठवीं और नवीं सदी में भारतीयों से अरबों ने और दूसरे पश्चात्य देशों ने गणित को सीखा। इस प्रकार हम जिस विज्ञान को अक्सर अरब वासियों की देन समझते हैं। उसके लिए भी हम वास्तव में भारत के ऋणी हैं। आर्यभट्ट, वाहरमिहिर और भास्कराचार्य आदि प्राचीन भारतीय वैज्ञानिकों ने जो गवेषाणाएं की थीं, उनसे भारतीय मस्तिष्क की पहुंच का अंदाजा लगाया जा सकता है। इनकी गवेषणाओं का मूल्यांकन आवश्यक है। आर्यभट्ट ने अपनी पुस्तक ''सूर्य सिद्धान्त'' में पाई, चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण संक्रान्ति आदि की पूर्ण विवेचना की है। भास्कराचार्य को तथाकथित न्यूटन के गुरूत्वाकर्षण के नियम का पहले से ही ज्ञान था। उन्होंने अपनी पुस्तक ''सिद्धान्त शिरोमणी'' में लिखा है–

आकृष्टि शक्तिश्च मही तथायत्।
स्वस्थं गुरूस्वामिमुखं स्वशक्तया।।
आकृष्यते तत्पततीव भांति! समे
समन्तात क्वपतत्विय रवेः।।

अर्थात् पृथ्वी में आकर्षणशक्ति है, वह आकाश में अवस्थित जड़ पदार्थों को स्वशक्ति द्वारा अपनी ओर खींचती है और

इसीलिए वे पदार्थ पृथ्वी पर गिरते हैं। यही बात बाद में न्यूटन ने गणित द्वारा सिद्ध की। आज की गणित की अति उन्नत शाखा चलन कलन (कैलकुलस) का आविष्कार आज से लगभग 815 वर्ष पूर्व ही भास्काराचार्य ने कर दिया था। ''सूर्य सिद्धान्त'' और पंच सिद्वान्तिका'' नामक ग्रन्थों में अंकों, भिन्नों, शून्य, धनात्मक, ऋणात्मक संख्याओं तथा सरल समीकरणों से लेकर वर्णात्मक समीकरणों तक का विवेचन भी दृष्टव्य है। उन दिनों इनकी जांच करना कोई छोटी सफलता न रही होगी। बुनियादी महत्व की बात तो यह है कि पुरातन काल में भी भारतीय वैज्ञानिकों ने आधुनिक वैज्ञानिकों को विस्मय में डाल देने वाले कुछ सिद्धान्त खोज डाले थे। 'पूर्व सिद्धान्त' में ग्रहों की औसत गति, वास्तविक स्थिति, स्थान, दिशा, काल, चन्द्रमा का उदय–अस्त ब्रह्माण्ड के विविध पहलुओं की स्थिति व अनेक प्रकार के यंत्रों तथा समय ज्ञात करने की विधियों का वर्णन है। ज्योषित शास्त्र की इन पुस्तकों में भारतीयों के रेखा गणित, बीजगणित और अंकगणित सम्बन्धी विशिष्ट ज्ञान का प्रमाण मिलता है। दिल्ली, जयपुर, वाराणसी और उज्जैन में सवाई जयसिंह द्वितीय की बनवाई गयी वेध शालाएं हमारे खगोलशास्त्रियों के खगोल विद्या में पहुंच की प्रमाण है।

वैशेषिक दर्शन के रचयिता मुनि कणाद ने बहुत पहले ही द्रव्य की अविनाशिता के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था। उन्होंने सर्वप्रथम कहा था कि पदार्थ का सबसे सूक्ष्म कण परमाणु है, जो अविभाज्य तथा अविनाशी है। इनका सूक्षम काल ईसा से पांच–छह सौ वर्ष पूर्व आंका गया है। उन्होंने प्रकाश और

ऊष्मा दोनों को पदार्थ का रूप माना है। इस प्रकार उन्होंने पदार्थ और ऊर्जा (प्रकाश तथा ऊष्मा) की समता का संकेत दिया। आगे चलकर एलबर्ट आइन्स्टाइन ने इसी बात की व्याख्या अपने बहु प्रचलित सूत्र $E = mc^2$ से की जो आज की नाभिकीय भौतिकी की आधारशिला है। इसके अतिरिक्त अहिभंग और वाचस्पति जैसे दार्शनिकों ने भौतिक शास्त्र के क्षेत्र में महत्वपूर्ण विचार प्रस्तुत किये। रसायन और औषधि के क्षेत्र में भी भारतवासी दुनिया में सबसे आगे थे। भारत में धातुओं को शुद्ध कारना जड़ी बूटियों से औषधियों का निर्माण करना, नाना प्रकार के प्राकृतिक रंग बनाना और किण्वन द्वारा सिरका और मदिरा बनाना इत्यादि क्रियाएं प्रचुर मात्रा में अतिप्राचीन काल से होती रही हैं। नागार्जुन को कई जटिल रासायनिक क्रियाओं का ज्ञान था। वह तिर्यक पातन क्रिया द्वारा पारे से सोना बनाना भी जानते थे।

नागार्जुन का काल दूसरी शताब्दी के आस–पास बताया जाता है। दिल्ली का लौह स्तम्भ धातुओं संबंधी भारतीय ज्ञान का प्रत्यक्ष उदाहरण है। औषधि और शल्य शास्त्रों सुश्रुत, चरक एवं वाणभट्ट के कार्यो के सप्रमाण उदाहरण मिलते हैं। तमाम क्रियाओं–प्रतिक्रयाओं के आविष्कर्ता ''नागार्जुन'' की प्रशंसा उनके समकालीन अनेक विदेशी विद्वानों ने की है। नागार्जुन के आविष्कारों में उनकी शोधन विधि, जारण–मारण प्रक्रिया एवं तिर्यक–पातन क्रिया आदि का स्थान सबसे अधिक है।

ब्रितानी विश्वकोष के एक बहुत पुराने संस्करण (1887) में चार्ल्स क्रंटन ने शल्य के बारे में लिखा है– आर्य जाति की दोनों शाखाओं में शल्य क्रिया का व्यवहार बहुत ही पुराने जमाने में उच्चकोटि की सफलता प्राप्त कर चुका था। आज भी चिकित्सा तथा शल्य से संबंधित उच्चकोटि का ज्ञान चरक एवं सुश्रुत की संहिताओं में प्रतिबिम्बित हैं। सुश्रुत स्टील के बने सौ से अधिक शल्य यंत्रों का वर्णन करते हैं। इनमें तरह–तरह के चाकू, छुरियां (लैसेट), उत्पादक (स्केटी फाइट) और अस्थि काटने वाली कैचिंया शलाकाएं आदि औजार हैं। स्पष्ट है कि उन दिनों ''शल्य क्रिया'' (आपरेशन) में भारतीय बहुत अधिक दक्ष थे। भारतीय चिकित्सकों ने आयुर्वेद पर 'रस प्रदीप' और 'भाव–प्रकाश' जैसे ग्रन्थ लिखे। भाव प्रकाश 1550 ई0 में भाव मिश्र नामक एक वैद्य ने लिखा। इसमें हृदय की बनावट उसके कार्य तथा रक्त संचार की जानकारी दी गयी है। इस प्रकार हृदय संबंधी जानकारी देने वाले सबसे पहले व्यक्ति सम्भवतः भाव मिश्र हैं। किन्तु विश्व में यह श्रेय हार्वे को दिया जाता है। संतोष की बात है कि भारतीय आयुर्वेद का ज्ञान अभी उतना अधिक नष्ट–भ्रष्ट नहीं हुआ है जितना कि अन्य ज्ञान। अच्छा होता यदि सरकार करोड़ों रूपये लगाकर विदेशों से दवायें मंगाने के बजाय आयुर्वेद के उत्थान में व्यय करती। इस दृष्टि से चरक, सुश्रुत और उनसे पूर्व के आवासों के ग्रंथ बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। वे हमें मानव जीवन के समृद्ध इतिहास के पुनर्निर्माण के लिए विश्वसनीय सामग्री देते हैं। दुर्भाग्य से प्राचीन इतिहास के अध्येताओं की दृष्टि इधर नहीं गयी है। उन पर केवल पुरानी पद्धति के उन अध्येताओं की दृष्टि गयी है, जो चिकित्सा के लिए इन ग्रंथों को अपना मार्ग–निर्देशक मानते हैं।

आधुनिक शोधकर्ताओं को इस ओर समुचित ध्यान देना चाहिए क्योंकि इस क्षेत्र में अनुसंधान आसानी से करके पुरानी सामग्री को प्रकाश में लाया जा सकता है। इस लेख में उन तमाम प्राचीन भारतीय वैज्ञानिकों के नामों का भी समावेश नहीं हो पाया है जिन्होंने अपने समय में बड़ी ही विस्मयकारी गवेषणाएं की थीं। डा0 सत्यप्रकाश ने अपनी पुस्तक ''भारतीय विज्ञान के कर्णधार'' की भूमिका लिखा है–

''प्राचीन ज्योतिष पर उसकी तीनों प्रमुख शाखाओं–गणित, भूगोल और खगोल में काम करते हुए मुझे बहुत ऐसी पुस्तकें और पांडलिपियां मिलीं जिसका इंजीनियरी, वैज्ञानिकी, सैन्य विज्ञान, पशु चिकित्सा विज्ञान जैसे विषयों से सम्बन्ध था। रसायन, आयुर्वेद और जीव विज्ञान

आज भी दुनिया में सबसे अधिक उपजाऊ भूमि हमारे पास है। हमारे पास खनिज सम्पदाओं की भी कमी नहीं है। विकसित राष्ट्र बनने की सभी संभावनाएं मौजूद हैं। बस जरूरत इस बात की है कि पूरे संकल्प के साथ हमें अपने सपने को साकार करने में जुट जाना चाहिए। देश के राजनेताओं को इसके लिए आवश्यक माहौल तैयार करना चाहिए जिससे भारत अपनी ताकत को पहचानते हुए आधुनिक ज्ञान विज्ञान के विकास में अपना योगदान दे सके। हमारे पास प्रतिभावान वैज्ञानिकों और इंजीनियरों की कमी नहीं है।

जैसे सामान्य विज्ञान सम्बन्धी पुस्तकें तो थीं ही इस सामग्री की सम्पन्नता और विविधता को देखकर में आश्चर्य विमुग्ध हुए बिना न रहा और मुझे ख्याल आया कि आज के वैज्ञानिकों के सामने प्राचीन ज्ञान को प्रस्तुत करने के लिए बड़े प्रयास की जरूरत है।''

इस प्राचीन भारतीय सामग्री का प्रकाश में आना अत्यन्त आवश्यक है और मेरा आशय यह नहीं है कि हम अपने पर कोटे से निकलकर बाहर न झांके। हम यह भी मानते हैं कि इन दिनों पश्चिम बहुत आगे बढ़ गया है। उसने अनेक प्रकार के आश्चर्यजनक आविष्कार एवं अनुसंधान किये हैं। लेकिन हमारा अतीत भी गौरवशाली है और हमें अपनी ताकत को पहचान कर ज्ञान विज्ञान की खोज में फिर जुट जाना चाहिए। हमारा प्राचीन गौरवशाली इतिहास से यह स्पष्ट परिलक्षित है कि भारतीय प्रतिभा या क्षमता में दुनिया में किसी से कम नहीं है। उसमें अपने विषयों में रम जाने और ध्यान को केन्द्रित करने की आदत है, जो एक विज्ञानी का जीवन है। उसमें तीक्ष्ण कल्पना शक्ति है जिससे बहुत सी असम्बद्ध बातों से भी सत्य को निकाला जा सकता है। इस बात की पुष्टि के लिए मैं एक ऐसे आधुनिक भारतीय वैज्ञानिक का नाम बताना चाहूंगा जिसने दुनिया को तीन बार आश्चर्य में डाल दिया। उनका नाम है आचार्य जगदीश चन्द्र बसु, जिन्होंने अपनी गवेषणाओं से ही नहीं बल्कि प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध कर दिया कि समस्त विश्व के स्थावर जंगम में एक चैतन्य शक्ति परिव्याप्त है। भारत के सर्वात्मवाद के दार्शनिक सिद्धांत की पुष्टि इस वैज्ञानिक ने अपने आविष्कृत यंत्रों के आधार पर की।

विश्वविख्यात गणितज्ञ रामानुजन को कौन नहीं जानता है जिनके द्वारा प्रस्तुत प्रश्नों ने आज भी दुनिया में उथल–पुथल मचा रखी है। आचार्य प्रफुल्ल चंद्र राय, बीरबल साहनी, शांतिस्वरूप भटनागर, पंचानल महेश्वरी, डॉ. होमी जहांगीर, भाभा, मेघनाद साहा और जगत प्रसिद्ध वैज्ञानिक एलबर्ट आइन्सटाइन को हैरत में डाल देने वाले सत्येन्द्रनाथ बोस आदि की अपने–अपने क्षेत्र में महती उपलब्धियां हैं। विश्व की सर्वोच्च शैक्षिणक तथा वैज्ञानिक संस्थाओं ने इन पर अपनी–अपनी मुहर भी लगायी है। विश्व–विश्रुत वैज्ञानिक रामन की उपलब्धियों का विश्व कायल है। रामन की खोज ''*रामन प्रभाव*'' की ख्याति इस बात से आंकी जा सकती है कि 1928–1939 में लगभग 2000 शोध पत्र इस विषय पर प्रकाशित हुए। सारे संसार में इस पर शोध पर कार्य किए और किये जा रहे हैं। आधुनिक लेसर की खोज से इसकी महत्ता पुनः बढ़ रही है। डॉ. एम. जी. के.मेनन, डॉ. राम चरण मेहरोत्रा, डॉ. नील रत्नघर, प्रो. टी.आर. शेषाद्रि आदि के कार्यों को विश्व में भी सराहा गया है। भोज्य पदार्थो से कैंसर की औषधि तैयार करके के.डी.एस. रिसर्च सेंटर के प्रो. शिवाशंकर त्रिवेदी ने पोषक ऊर्जा के जिस नये विज्ञान की आधार शिला रखी है उसमें मानव मंगल की विराट संभावनाएं छिपी हुई हैं।

यह भी सत्य है कि पश्चिम ने इन दिनों कई विस्मयकारी खोजें की है और उनकी तुलना में महान भारत का योगदान बिल्कुल ही संतोषप्रद नहीं है। वास्तव में यह बड़े ही आश्चर्य की बात है कि भारत जो प्राचीन समय में दुनिया का सरताज था, आज पतन की ओर उन्मुख हो रहा है, आखिर ऐसा क्यों? इस प्रश्न को हम टाल नहीं सकते, क्योंकि हो सकता है यह हमारे अस्तित्व के लिए महत्वपूर्ण हो। आज भी दुनिया में सबसे अधिक उपजाऊ भूमि हमारे पास है। हमारे पास खनिज सम्पदाओं की भी कमी नहीं है। विकसित राष्ट्र बनने की सभी संभावनाएं मौजूद हैं। बस जरूरत इस बात की है कि पूरे संकल्प के साथ हमें अपने सपने को साकार करने में जुट जाना चाहिए। देश के राजनेताओं को इसके लिए आवश्यक माहौल तैयार करना चाहिए जिससे भारत अपनी ताकत को पहचानते हुए आधुनिक ज्ञान विज्ञान के विकास में अपना योगदान दे सके। हमारे पास प्रतिभावान वैज्ञानिकों और इंजीनियरों की कमी नहीं है। ❑

स्वदेशी सन्देश

आज जो देश आर्थिक दृष्टि से आगे हैं, वही विश्व पर छाये हैं। जापान जैसा छोटा-सा देश अमरीका जैसे विशाल और सम्पन्न देश को भी आज चुनौती दे रहा है। उसका मुख्य कारण है जापानवासियों का स्वदेशी प्रेम। ये लोग सस्ता और अच्छा माल भी यदि वह विदेशी है तो खरीदना स्वीकार नहीं करते। अपने देश का बना महंगा माल ही उन्हें स्वीकार है। जापान की उन्नति का यही राज है।

मत कीजिए डिवाइड एण्ड रूल

आरक्षण दो तरह से काम करता है। पिछड़े वर्गों के श्रेश्ठ युवाओं को आरक्षण के माध्यम से भाोशक वर्ग में जोड़ लिया जाता है। आज दलित आईएएस अधिकारी उच्च वर्गों से साझा करके दलितों का भाोशण करने में लगे हुये हैं। दलितों में जो प्रखर युवा होते हैं वे सरकारी नौकरी पा जाते हैं और उच्च वर्गों के साथ जुड़ जाते हैं। दूसरे, आम दलित का ध्यान नेताओं द्वारा किये जा रहे आर्थिक भाोशण से हटकर ऊंची जातियों द्वारा किये जा रहे सामाजिक अत्याचार की ओर मुड़ जाता है। समाज को दलित और उच्च जातियों के बीच बांट दिया गया है। चतुर बिल्ली ने दो कुत्तों की लड़ाई सुलझाने के बहाने रोटी को चट कर लिया था। इसी प्रकार छुद्र नेताओं और सरकारी कर्मियों का अपवित्र गठबन्धन समाज का विभाजन कर अपना हित साध रहा है।

■ डॉ.भरत झुनझुनवाला

दे□ा में जाति का कलंक जारी है। जाति के बाहर विवाह करने के लिये दिल्ली यूनिवर्सिटी की एक छात्रा का उसी के माता–पिता ने कत्ल कर दिया। बिहार के मुख्यमंत्री जीतन राम मांझी ने कहा है कि उच्च जातियों के लोग आर्यों का वंशज होने के कारण विदेशी हैं। इस अंधकार के बावजूद आशा की किरण भी है। जाट बाहुल्य हरियाणा में पंजाबी मनोहर लाल खट्टर और मराठा दबदबे वाले महाराश्ट्र में ब्राह्मण देवेन्द्र फडनविस मुख्य मंत्री बने हैं। गत आम चुनाव में उत्तर प्रदेश में आम जनता ने जाति के समीकरण को दरकिनार करते हुये भाजपा को वोट दिये थे। यह उथल पुथल हमें हमें जाति तथा आरक्षण पर पुनर्विचार करने का अवसर प्रदान करती है।

जति जैसी समस्या अनेक देशों में है। मलेशिया में मलय भूमिपूत्रों तथा चीनियों के बीच खाई थी। व्यापार चीनियों के हाथ में था जबकि बहुमत भूमिपुत्रों का। सत्तर के दशक में वहां यूनिवर्सिटी के दाखिलों तथा सरकारी नौकरियों में भूमिपुत्रों के लिये आरक्षण लागू किया गया। हाल में प्रधान मंत्री रजाक ने आरक्षण की मात्रा में कटौती की है। साथ–साथ व्यापार के अवसर तथा ट्रेनिंग को भूमि पुत्रों के लिये विशेश पैकेज बनाया गया है। दक्षिण अफ्रीका में नसलवाद की समाप्ति के बाद काले लोगों के लिये आरक्षण किये गये थे। सालिडेरिटी द्वारा किये गये अध्ययन में कहा गया है कि आरक्षण के प्रभाव से ब्लैक संभ्रान्त मध्य वर्ग स्थापित हो गया है। बहुसंख्यक ब्लैक लोग घोर गरीबी में ही जीवन यापन कर रहे हैं। इन्हें आरक्षण का लाभ नहीं मिला है। संस्था का सुझाव है कि आरक्षण के

दरअसल आरक्षण को जारी रखने में छुद्र नेताओं और सरकारी कर्मियों का स्वार्थ निहित है। वर्तमान व्यवस्था में इन्हें भारी वेतन के साथ–साथ भ्रश्टाचार से भारी आय हो रही है। आम आदमी तुलना में गरीब बना हुआ है। इनके लिये चुनौती है कि गरीब का ध्यान गरीबी से भटका कर कहीं और केन्द्रित किया जाये। यह भटकाव आरक्षण के माध्यम से किया जा रहा है। गरीब खपरैल के मकान में रहता है और 300 दिन 10 घन्टे मेहनत करता है।

स्थान पर स्किल डेवलपमेंट पर ध्यान देना चाहिये।

सन 1965 में अमरीकी राश्ट्रपति जानसन ने भाासनसदेश जारी किया था जिसके अनुसार सरकारी एवं निजी क्षेत्र की बड़ी कम्पनियों के लिये सभी नागरिकों को बराबर अवसर देना अनिवार्य बना दिया गया था। ब्लैक नेता मार्टिन लूथर किंग की यह प्रमुख मांग थी। इसी भाासनसदेश में आरक्षण को गैर कानूनी बताया गया था। सन 1969 में राश्ट्रपति निक्सन ने सरकारी ठेकेदारों में ब्लैक लोगों को प्राथमिकता को लागू किया था। इस प्रकार के कदमों का परिणाम है कि आज अमरीका में ब्लैक राश्ट्रपति ओबामा सत्तारूढ़ हैं।

अमरीका का अनुभव बताता है कि बिना आरक्षण के पिछड़े वर्गों का उत्थान संभव है। बल्कि ऐसा भी संभव है कि आरक्षण न होने के कारण ही उस देश में ब्लैक लोगों की स्थिति में सुधार हुआ है। समाज का ध्यान ब्लैक लोगों की क्षमता में विकास हासिल करने पर केन्द्रित रहा न कि आरक्षण की बैसाखी के सहारे बढ़ाने का। वैश्विक सोच आरक्षण से हटकर पिछड़ों की क्षमता में सुधार पर ध्यान देने की ओर मुड़ रही है। इसी क्रम में भारतीय उद्यमियों ने निजी क्षेत्रों में आरक्षण का विरोध किया है। आपने सुझाव दिया है कि पिछड़े वर्गों के लोगों के लिये शिक्षा के अवसर बढ़ाये जायें तथा उन्हें रोजगार देने को टैक्स में छूट दी जाये। टैक्स के इंसेंटिव से जादा संख्या में पिछड़े वर्गों को रोजगार मिल सकेगा।

महात्मा गांधी भी आरक्षण को पसन्द नहीं करते थे। वे मानते थे कि हम आरक्षण के माध्यम से पिछड़े वर्गों के ऊपर पिछड़ी जाति का ठप्पा लगा देंगे। सामान्य नागरिक के रूप में जीने के लिये यह अड़चन बन जायेगी। गांधीजी ने डॉ. अम्बेडकर के आग्रह पर अल्प समय के लिये आरक्षण को स्वीकार किया था। डॉ. अम्बेडकर को भय था कि शिक्षा तथा रोजगार जैसे कार्यक्रम प्रभावी नहीं होंगे चूंकि देश में जातिवाद की जड़ें बहुत गहरी थीं। अब परिस्थिति बदल गयी है। हमारे दलित भाई तमाम उच्च पदों पर आसीन हैं। अब जरूरत है कि हम आरक्षण से स्किल डेवलपमेंट की ओर मूव करें। आसान ऋण जैसे कार्यक्रम स्थापित करें।

महात्मा गांधी भी आरक्षण को पसन्द नहीं करते थे। वे मानते थे कि हम आरक्षण के माध्यम से पिछड़े वर्गों के ऊपर पिछड़ी जाति का ठप्पा लगा देंगे। सामान्य नागरिक के रूप में जीने के लिये यह अड़चन बन जाएगी। गांधीजी ने डॉ. अम्बेडकर के आग्रह पर अल्प समय के लिये आरक्षण को स्वीकार किया था। डॉ. अम्बेडकर को भय था कि शिक्षा तथा रोजगार जैसे कार्यक्रम प्रभावी नहीं होंगे चूंकि देश में जातिवाद की जड़ें बहुत गहरी थीं। अब परिस्थिति बदल गयी है। हमारे दलित भाई तमाम उच्च पदों पर आसीन हैं। अब जरूरत है कि हम आरक्षण से स्किल डेवलपमेंट की ओर मूव करें।

दरअसल आरक्षण को जारी रखने में छुद्र नेताओं और सरकारी कर्मियों का स्वार्थ निहित है। वर्तमान व्यवस्था में इन्हें भारी वेतन के साथ–साथ भ्रश्टाचार से भारी आय हो रही है। आम आदमी तुलना में गरीब बना हुआ है। इनके लिये चुनौती है कि गरीब का ध्यान गरीबी से भटका कर कहीं और केन्द्रित किया जाये। यह भटकाव आरक्षण के माध्यम से किया जा रहा है। गरीब खपरैल के मकान में रहता है और 300 दिन 10 घन्टे मेहनत करता है। सरकारी टीचर महोदय मुश्किल से 200 दिन चार घन्टे काम करते हैं। फिर भी उन्होंने आलीशान चारमंजिला पक्का मकान बनाया है। इस आक्रोश को आरक्षण के माध्यम से नरम किया जा रहा है।

आरक्षण दो तरह से काम करता है। पिछड़े वर्गों के श्रेश्ठ युवाओं को आरक्षण के माध्यम से भाोशक वर्ग में जोड़ लिया जाता है। आज दलित आईएएस अधिकारी उच्च वर्गों से साझा करके दलितों का भाोशण करने में लगे हुये हैं। दलितों में जो प्रखर युवा होते हैं वे सरकारी नौकरी पा जाते हैं और उच्च वर्गों के साथ जुड़ जाते हैं। दूसरे, आम दलित का ध्यान नेताओं द्वारा किये जा रहे आर्थिक भाोशण से हटकर ऊंची जातियों द्वारा किये जा रहे सामाजिक अत्याचार की ओर मुड़ जाता है। समाज को दलित और उच्च जातियों के बीच बांट दिया गया है। चतुर बिल्ली ने दो कुत्तों की लड़ाई सुलझाने के बहाने रोटी को चट कर लिया था। इसी प्रकार छुद्र नेताओं और सरकारी कर्मियों का अपवित्र गठबन्धन समाज का विभाजन कर अपना हित साध रहा है।

इस जंगल से ऊपर उठकर भाजपा ने जाति समीकरणों को तोड़ते हुये नई पहल की है जिसका स्वागत करना चाहिये। वास्तव में जाति का मूल जन्म नहीं बल्कि पेशा है। खाती, सुनार, यादव

आदि जातियां किसी पेशे से जुड़ी थीं। जो जिस पेशे से जीवन यापन करता था उसे उस नाम से जाना गया। सम्भव है भविश्य में साफ्टवेयर इंजिनियरों और हवाई जहाज के पायलटों की जातियां सृजित हो जायें। लोगों के पेशों में परिवर्तन होने से उनकी जाति स्वयं बदल जाती है। इस दृश्टि से हमें हर व्यक्ति को उसके पेशे के अनुसार जाति में अंकित कर देना चाहिये। दरअसल गड़बड़ी जाति को जन्म से जोड़ने में हुयी है। बड़ी संख्या में लोगों के पारिवारिक पेशे को छोड़कर नये पेशों से जीविकोपार्जन करने से उनका परम्परागत जाति से जुड़ाव कम हो रहा है। इस सुखद दिशा परिवर्तन को आज देखा जा सकता है। इसे और गति देने के लिये दो कदम उठाने चाहिये। पहला कि बड़ी संख्या में निजि क्षेत्र में उच्च स्तर के रोजगार बनाने की महत्वाकांक्षी योजना बनानी चाहिये। श्रम कानूनों के सरलीकरण के साथ–साथ कम संख्या में श्रमिकों को रोजगार देने वाले उद्यमों पर 'बेरोजगारी टैक्स' लगाना चाहिये। पिछड़े वर्ग के लोगों को रोजगार देने पर टैक्स में छूट देनी चाहिये। ऐसा करने से पूरे समाज के लिये रोजगार के अवसर बढ़ेंगे। दूसरे, सरकारी कर्मियों के वेतन में भारी कटौती करनी चाहिये। 2012 में देश के नागरिक की औसत आय 61 हजार रुपये प्रति वर्श थी। आज 70,000 रुपये होगी। क्लास थ्री के सरकारी कर्मी का वेतन इतना निर्धारित करना चाहिये। ऐसा करने पर दलित युवकों के लिये सरकारी नौकरी का मोह नहीं रहेगा; उन्हें भोशक वर्ग में सम्मिलित नहीं किया जा सकेगा और वे दलितों के सर्वांगीण विकास की मांग करेंगे। छुद्र नेताओं और सरकारी कर्मियों के इस भ्रश्ट और अपवित्र गठबन्धन को तोड़ने की जरूरत है। ❑

:: सदस्यता संबंधी सूचना ::

मान्यवर,,

स्वदेशी पत्रिका आज देश में चल रहे स्वदेशी आंदोलनों का स्थापित प्रतीक बन चुकी है। पिछले कई वर्षों से स्वदेशी पत्रिका ने असंगत एवं एकतरफा वैश्वीकरण, जनविरोधी आर्थिक उदारीकरण के विरोध एवं वैकल्पिक और रचनात्मक स्वदेशी आंदोलन के पक्ष में एक सक्रिय प्रहरी के नाते हमेशा आपको जागरूक बनाया है एवं आपसे संवाद स्थापित किया है। विगत कालखंड में इन सभी मुद्दों पर हमें आप जैसे सजग पाठकों का अपेक्षित सहयोग भी मिलता रहा है और भविष्य में भी मिलेगा ऐसा, विश्वास है।

आपसे आग्रह है कि स्वदेशी पत्रिका की आपकी सदस्यता अवधि यदि समाप्त हो गई हो तो कृपया पिछले समय से आगामी वर्ष तक की राशि धनादेश (मनीआर्डर), चेक एवं मांग पत्र (डिमांड ड्राफ्ट) के माध्यम से शीघ्र भेजने की कृपा करें। पत्रिका के लिफाफे के उपर चिपकाए गए पते की प्रथम पंक्ति में सदस्यता अवधि अंकित है। आप अपनी सदस्यता राशि ''स्वदेशी पत्रिका'' के नाम पत्रिका के कार्यालय के पते पर भेज सकते हैं। सदस्यता अद्यतन न हो पाने की स्थिति में वित्तीय कारणों से पत्रिका आगे जारी रखना कठिन होगा।

सदस्यता शुल्क निम्न प्रकार है :–

स्वदेशी पत्रिका	वार्षिक	आजीवन
हिन्दी	150 रुपए	1500/– रुपए
अंग्रेजी	150 रुपए	1500/– रुपए

हमें आपका सहयोग स्वदेशी आंदोलन को राष्ट्रव्यापी एवं जनोन्मुखी बनाने में प्रमुख भूमिका निभाएगा। कृपया स्वदेशी पत्रिका स्वयं भी पढ़ें एवं अन्य को भी पढ़ने के लिए प्रेरित करें। पत्रिका के संबंध में अपना निष्पक्ष विचार हमें अवश्य भेजें।

आप सीधे बैंक ऑफ इंडिया, खाता नं. 602510110002740 IFSC : BKID 0006025 (Ramakrishnapuram) में जमा करवा सकते हैं और उसकी रसीद और अपना पता आप कार्यालय में अवश्य भेजे।

स्वदेशी पत्रिका कार्यालय, 'धर्मक्षेत्र' शिव शक्ति मंदिर, सैक्टर–8, रामकृष्णपुरम्, नई दिल्ली–22

अध्यात्म के बिना विज्ञान है अधूरा

बिना शरीर के न तो आत्मा का वजूद है और बिना आत्मा के न तो शरीर का अस्तित्व है। क्योंकि आज भी विज्ञान के पास वह उपाय नहीं है जिससे मनुष्य के विकारों, काम, क्रोध, लालच को नियंत्रित किया जा सके। विज्ञान के पास इन विकारों, भोग–विलासिता को बढ़ाने के साधन तो पर्याप्त है, मगर इन्हें नियंत्रण करने के साधन नहीं है। इन विकारों पर लगाम सिर्फ और सिर्फ भारतीय दर्शन और अध्यात्म ही लगा सकता है।

■ **वीरेन्द्र काजवे**

आज से हजारों वर्ष पहले ही गीता के ज्ञान ने विज्ञान को पारिभाषित कर दिया था कि जब और जहाँ कोई कर्म होगा उसका फल अवश्य ही मिलेगा। दुनिया में ऐसा कोई कर्म नहीं है जिसे किया जाए और फल न मिले। इसी बात

को आधुनिक विज्ञान पारिभाषित करते हुए कहता है कि ''यदि कोई क्रिया होगी तो उसकी प्रतिक्रिया अवश्य होगी।''

हमारे देश के लिए विज्ञान 'अधुना' अर्थात् आधुनिक नहीं है यह तो हमारे भारतीय दर्शन संतों की वाणी में प्राचीन काल से ही छिपा हुआ है। उड़न खटोले का आविष्कार अमरीका के जॉन राईट बंधुओं के लिए बड़ी उपलब्धि हो सकती है हमारे लिए नहीं! क्योंकि हमारे पूर्व रामायण और महाभारत काल में पहले ही पुष्पक विमानों से आसमान की सैर किया करते थे। अगर हमें कुछ नया करने से है तो वह इतना कि विज्ञान के आविष्कारों और चमत्कारों का लाभ उठाना जो हम क्या संभवतः पूरा विश्व नहीं कर पाया है जैसे – विज्ञान के स्वास्थ्य और चिकित्सा क्षेत्र की बात करें तो आज विज्ञान ने बड़ी–बड़ी बीमारियों की दवाईयां खोज निकाली है। शरीर के अंदर के भाग को हमें कम्प्यूटर पर दिखा दिया है। इसके बावजूद देश और दुनिया में अस्वस्थ लोगों की संख्या तेजी से बढ़ती जा रही है। लोगों को स्वास्थ्य लाभ के लिए वर्तमान सरकार एम्स जैसे अस्पतालों की स्थापना हर राज्य में करने की योजना पर कार्य कर रही है। यह अच्छी बात है। मगर इससे भी अच्छी बात यह होती कि सरकार या मेडिकल क्षेत्र की सालाना रिपोर्ट प्रस्तुत करती और उसमें बताया जाता कि पिछले वर्ष की अपेक्षा इस वर्ष अस्वस्थ व्यक्तियों की संख्या में तेजी से कमी हो रही है। मेडिकल स्टोर्स और निजी अस्पतालों की संख्या घटती जा रही है। तब हम कह सकते थे कि वास्तव में विज्ञान के चिकित्सा क्षेत्र में हुए आविष्कारों और चमत्कारों का लाभ हमारे देश की जनता को मिला है। मृत्यु दर में कमी कोई बहुत बड़ी उपलब्धि नहीं है बल्कि स्वस्थ लोगों की संख्या में निरंतर वृद्धि सबसे बड़ी उपलब्धि मानी जाती। इसी प्रकार हमारे देश की शिक्षा का हाल है।

आज से पचास–साठ वर्ष पूर्व की ही हम बात करें तो हमारे देश में शिक्षित लोगों की संख्या जरूर कम थी किन्तु उसी अनुपात में हिंसा अपराध भी कम होते थे। किन्तु जैसे–जैसे शिक्षा के प्रचार–प्रसार में वृद्धि होती गई वैसे–वैसे आर्थिक नैतिक व अन्य अपराधों में रिकार्ड वृद्धि हुई और इससे भी अधिक चकित करने वाली बात यह है कि इन अपराधों में शिक्षित व्यक्तियों जिनमें डॉक्टर, इंजीनियर और कम्प्यूटर विशेषज्ञ भी शामिल है। जितने रोजगार के अवसर हमने निर्मित किए उतनी अधिक लूट–खसोट, घूस व रिश्वत बढ़ी। केन्द्र

व राज्य के कर्मचारियों व अधिकारियों के वेतन में जितनी वृद्धि हुई उतने ही वे आर्थिक भ्रष्ट होते गए। यदि शिक्षा के प्रचार–प्रसार और शिक्षित लोगों के प्रतिशत में वृद्धि का लाभ हमें मिलना होता तो केन्द्र व राज्य सरकारों की वार्षिक रिपोर्ट कुछ इस प्रकार होती कि देश में शिक्षित लोगों में वृद्धि होने से पिछले एक वर्ष या पांच वर्षों में प्राइवेट व सरकारी सेक्टर में ईमानदारी में वृद्धि हुई। शिक्षित लोगों के आने से सरकारी व निजी संस्थानों में पिछले कुछ वर्षों की अपेक्षा इस वर्ष रिश्वतखोरी के प्रकरणों में कमी आई, लोगों में नैतिकता का भाव जागृत हुआ, जनकल्याण की योजनाओं में अचानक गति पकड़ी है। शिक्षित पीढ़ी का रूझान अब भोग–विलासिता से हटकर समाज कल्याण और राष्ट्र निर्माण की ओर होता जा रहा है।

ऐसा क्यों हो रहा है इसका एकमात्र कारण यही है कि **हमने विज्ञान को अध्यात्म से निकाल कर अलग कर दिया है। विज्ञान क्या है? यह अध्यात्म और हमारे धर्म दर्शन से उत्पन्न हुआ नवजात शिशु है बिना माँ के बच्चे भी वैसे ही भटकते है जैसा हमारा विज्ञान भटक रहा है। हमारा एक भी धर्म व दर्शन शास्त्र ऐसा नहीं है जो वैज्ञानिक विचार, दृष्टिकोण और आचरण को प्रस्तुत नहीं करता।**

हम चरित्र का उपदेश देते हुए कहते हैं कि धन गया तो कुछ नहीं गया, स्वास्थ्य गया तो कुछ गया किन्तु चरित्र गया तो सबकुछ गया। इस छोटे से उपदेश में जीवन का कितना बड़ा विज्ञान छिपा है? जब कहा जाता है कि काजल की कोठरी से कोई भी निष्कलंक नहीं निकल सकता। आज देखिये भोग–विलासिता की काली कोठरी से कौन बेदाग बाहर आया है। क्या यह आध्यात्मिक युक्त विज्ञान या सिद्धांत नहीं है जब गोस्वामी तुलसीदास जी कहते है कि – कोई तपी हो चाहे कैसी जपी हो, कामिनी के साथ काम जागे ही जागे। क्या इस आध्यात्म चिंतन और दर्शन के सिद्धांत को कोई झुठला सकता है।

मेरा कहने का आशय यह है कि विज्ञान और आध्यात्मिकता का संबंध आत्मा और शरीर जैसा है, हम कह सकते हैं कि जहां विज्ञान शरीर है तो अध्यात्म विज्ञान शरीर की प्राण आत्मा है। बिना शरीर के न तो आत्मा का वजूद है और बिना आत्मा के न तो शरीर का अस्तित्व है। क्योंकि आज भी विज्ञान के पास वह उपाय नहीं है जिससे मनुष्य के विकारों, काम, क्रोध, लालच को नियंत्रित किया जा सके। विज्ञान के पास इन विकारों, भोग–विलासिता को बढ़ाने के साधन तो पर्याप्त है, मगर इन्हें नियंत्रण करने के साधन नहीं है। इन विकारों पर लगाम सिर्फ और सिर्फ भारतीय दर्शन और अध्यात्म ही लगा सकता है। मेरा तात्पर्य विज्ञान का कोरा विरोध करना भी नहीं है बल्कि विज्ञान की उपलब्धियों, चमत्कारों और आविष्कारों के सात्विक स्वरूप के निर्माण से है और यह तभी संभव हो सकेगा जब विज्ञान को अध्यात्म के साथ मिश्रित कर दिया जाए। जब इनका मिश्रण होगा तभी हमें विज्ञान के चमत्कारों का, सुविधाओं का सही अर्थों में लाभ मिल पाएगा। ❑

:: सूचना ::

स्वदेशी पत्रिका सम्राज्यवाद के खिलाफ एक सशक्त आवाज है। पत्रिका को ऐसे लोगों से प्रतिक्रियाएं, रिपोर्ट या आलेख की अपेक्षा है जो राष्ट्रहित में सोचते हैं और देश के स्वावलम्बन के लिए कुछ करने की इच्छा रखते है। जरूरी नहीं कि आप पत्रकार या लेखक ही हों, अपने आसपास से जुड़ी चीजों के प्रति आपकी संवदेना है और आप शब्दों में उसे लिख सकते है तो हमें अवश्य लिख भेजें। साथ ही स्वदेशी पत्रिका में छपे लेख आपको कैसे लगते हैं, क्या आप इसमें कुछ नए विषयों का समायोजन चाहते हैं कृपया हमें अवश्य अवगत कराएं। आपके विचारों को हम प्राथमिकता के साथ प्रकाशित करने का भी प्रयास करेंगे।

हमारा पता है :–

संपादक, स्वदेशी पत्रिका

'धर्मक्षेत्र', सेक्टर–8, बाबू गेनू मार्ग, रामकृष्णपुरम्, नयी दिल्ली–110022

परमाणु समझौते से भारत को क्या हासिल हुआ है?

वर्ष 2011 में जापान में हुई फुकुशिमा परमाणु रिएक्टर दुर्घटना के बाद सुरक्षा संबंधी पुराने सवाल फिर से उठ खड़े हुए हैं। यह इस पृष्ठभूमि के खिलाफ है कि भारत को अत्यधिक कीमत वाले रिएक्टरों के आयात की फिर से समीक्षा करनी चाहिए। एक बात तो निश्चित है कि भारत को सभी ऊर्जा स्नोतों से बिजली उत्पादन को बढ़ाना चाहिए। भारत को चाहिए कि वह सुरक्षित परमाणु बिजली उत्पादन पर बल दे। वास्तव में देश के घरेलू परमाणु बिजली उद्योग ने बहुत ही अच्छा काम किया है।

■ ब्रह्मा चेलानी

अगले साल भारत–अमेरिका के बीच परमाणु समझौते की 10वीं वर्षगांठ मनाएंगे। आखिर इस बहुप्रचारित परमाणु समझौते से भारत को क्या हासिल हुआ है? उत्तर यही है कि अभी तक बिजली पैदा करने वाले एक भी रिएक्टर का निर्माण नहीं हो सका है। इसका एकमात्र योगदान यही है कि अब भारत यूरेनियम का आयात कर सकेगा और ज्यादा से ज्यादा इस आयातित ईंधन को अंतरराष्ट्रीय निगरानी में बिजली रिएक्टरों के लिए इस्तेमाल किया जा सकेगा। इस समझौते के लिए भारत ने जो कीमत चुकाई वह बहुत अधिक है। इस संदर्भ में गौर करें कि स्वदेश में निर्मित भारत के एक तिहाई रिएक्टर स्थायी रूप से अंतरराष्ट्रीय निगरानी में पहले से ही चल रहे हैं।

तत्कालीन प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने भारत–अमेरिका के बीच इस समझौते के लिए एक बड़ी राजनीतिक पूंजी का निवेश किया। उनके पहले कार्यकाल का अधिकांश समय इस समझौते को अंतिम रूप देने में ही बीता। इस संदर्भ में कभी नहीं बताया गया कि उन्होंने क्यों परमाणु प्रतिष्ठान को नजरअंदाज किया और साइरस रिसर्च रिएक्टर को बंद किया। हालांकि 1960 से यह रिएक्टर हथियार बनाने लायक प्लूटोनियम उत्पादन का बड़ा स्रोत रहा है। तथ्य यही है कि लाखों डॉलर की लागत पर साइरस रिएक्टर का नवीनीकरण किया गया था और इसे फिर से चालू किए महज दो वर्ष हुए थे जब अमेरिकी दबाव में डॉ. मनमोहन सिंह इसे बंद करने को सहमत हुए। यह ऐसे समय में किया जब पाकिस्तान चीन की मदद से अपने परमाणु हथियार कार्यक्रम को तेजी से आगे बढ़ा रहा था। वैश्विक स्तर पर परमाणु बिजली दूसरे अन्य माध्यमों से बिजली उत्पादन में आने वाली लागत की तुलना में अधिक चुनौतीपूर्ण है। दूसरी समस्या परमाणु कचरे के निपटारे की स्थायी सुविधा के अभाव में बड़ी मात्रा में पैदा होने वाले परमाणु ईंधन की है। पिछले महीने जारी की गई पेरिस स्थित अंतरराष्ट्रीय परमाणु ऊर्जा आयोग की वर्ल्ड एनर्जी आउटलुक 2014 की रिपोर्ट के मुताबिक भविष्य में परमाणु बिजली को समस्याओं का सामना करना पड़ सकता है। **परमाणु बिजली को लेकर एक महत्वपूर्ण तथ्य है कि यह दुनिया का सबसे बड़ा सब्सिडी आधारित ऊर्जा उद्योग है। यहां तक कि इससे सर्वाधिक खतरनाक कचरे का उत्पादन होता है, जिसका सुरक्षित निस्तारण भविष्य की पीढ़ी के लिए एक चिंता की बात है। बिजली रिएक्टर आधी शताब्दी से भी अधिक समय से प्रचलन में हैं, लेकिन बावजूद इसके यह उद्योग सरकारी समर्थन के बिना अपने पैरों पर खड़ा नहीं हो सका है।**

तकनीकी प्रगति के कारण परमाणु बिजली उत्पादन की लागत घटने के बावजूद ऊर्जा के अन्य स्रोतों की तुलना में इसकी लागत कई गुना अधिक है। 1980 के पूर्वार्द्ध में विश्व के कुल बिजली उत्पादन की तुलना में परमाणु बिजली का हिस्सा अपने सर्वोच्च स्तर 17 फीसद पर पहुंच गया। इसके बाद से इसमें निरंतर गिरावट आई है और वर्तमान में यह अनुमान के मुताबिक तकरीबन 13 फीसद है। 2011 में जापान में हुई फुकुशिमा परमाणु रिएक्टर दुर्घटना के बाद सुरक्षा संबंधी पुराने सवाल फिर से उठ खड़े हुए हैं। यह इस पृष्ठभूमि के खिलाफ है कि भारत को अत्यधिक कीमत वाले रिएक्टरों के आयात की फिर से समीक्षा करनी चाहिए। एक बात तो निश्चित है कि भारत को सभी ऊर्जा स्नोतों से बिजली उत्पादन को बढ़ाना चाहिए। भारत को चाहिए कि वह सुरक्षित परमाणु बिजली उत्पादन पर बल दे। वास्तव में देश के घरेलू परमाणु बिजली उद्योग ने बहुत ही अच्छा काम किया है। उसने कम कीमत पर लोगों को बिजली मुहैया कराई जिस कारण पश्चिमी कंपनियों के लिए वह दुश्मन बन गया। नवीनतम स्वदेशी रिएक्टरों से पता चलता है कि हम निर्धारित समयावधि में वैश्विक स्तर के परमाणु संयत्रों के निर्माण में उन्हें मात दे सकते हैं। मनमोहन सरकार ने बिना किसी प्रतिस्पर्धी निविदा प्रक्रिया के बड़े रिएक्टरों के आयात का निर्णय लिया। इसके तहत फ्रांस की अरेवा, अमेरिका की वेस्टिंगहाउस और जीई तथा रूस की एटम्सट्रायएक्सपोर्ट का चयन एक तरह के न्यूक्लियर पार्क के निर्माण के लिए किया गया। इसके तहत एक ही स्थान पर कई रिएक्टर स्थापित किए जाने थे। रिएक्टरों के निर्माण के लिए किसानों और दूसरे अन्य लोगों से जमीन अधिग्रहण करना था। विदेशी विक्रेताओं के लिए एक समर्पित पार्क के निर्माण का

फैसला कर सरकार ने अपने हाथ खुद ही बांध लिए।

चूंकि आयातित रिएक्टरों को भारत सरकार द्वारा संचालित किया जाना था इसलिए विदेशी विक्रेताओं को बाजार दर पर बिजली उत्पादन की जिम्मेदारी से मुक्त कर दिया गया। वेस्टिंगहाउस, जीई और अरेवा ने भी इच्छा जाहिर की कि उन्हें किसी भी तरह की दुर्घटना की स्थिति में शुरुआती उत्तरदायित्व से मुक्त रखा जाए ताकि उन्हें कोई जोखिम नहीं रहे और वे मुनाफा कमा सकें। यदि भारत में फुकुशिमा जैसी कोई दुर्घटना होती है तो यह भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए बहुत ही खतरनाक साबित होगी। हाल में ही ओसाका सिटी यूनिवर्सिटी ने अपने अध्ययन में बताया है कि जापान में हुई फुकुशिमा दुर्घटना की कीमत 105 अरब डॉलर है। दूसरे देशों की तरह ही भारत के नए परमाणु संयत्र भी तटवर्ती क्षेत्रों में स्थित हैं ताकि इनके संचालन के लिए ताजे पानी के बजाय समुद्री जल संसाधन का इस्तेमाल किया जा सके। लेकिन तटवर्ती क्षेत्र प्रायः न केवल बहुत अधिक आबादी वाले होते है, बल्कि तमाम महत्वपूर्ण संपत्तियां भी होती हैं। समुद्र के किनारे स्थित रिएक्टरों पर ग्लोबल वार्मिंग के चलते प्राकृतिक आपदा भी आ सकती है, जैसा कि छह वर्षों से अधिक समय पूर्व फुकुशिमा में देखने को मिला।

2004 में भारतीय समुद्र में आई सुनामी से चेन्नई परमाणु बिजली स्टेशन डूब गया था, लेकिन मुख्य रिएक्टर को सुरक्षित रूप से बंद कर दिया गया था, क्योंकि इलेक्ट्रिकल सिस्टम अधिक ऊंचे स्थान पर स्थापित किया गया था। बावजूद इसके भारत की ऊर्जा जरूरतों के लिहाज से परमाणु समझौता व्यर्थ साबित हुआ, जबकि अमेरिका के लिए यह एक बड़ी सफलता थी। इससे बड़े हथियारों की बिक्री का रास्ता खुला जिसने अमेरिका को भारत का सबसे बड़ा हथियार आपूर्तिकर्ता बना दिया।

अमेरिका के लिए यह समझौता शुरुआत से ही महज ऊर्जा तक केंद्रित होने के बजाय भूसामरिक रणनीति के लिहाज से उपयोगी था। दुर्घटना संबंधित उत्तरदायित्व पर कोई विवाद खड़ा नहीं होने के बावजूद एक दशक से भी अधिक समय में एक भी संचालन योग्य परमाणु बिजली संयत्र का आयात नहीं हो सका। जमीनी स्तर पर विरोध और व्यावसायिक रिएक्टरों की कीमत में इजाफे के कारण ऐसा नहीं हो सका। अरेवा, वेस्टिंगहाउस और जीई ने एनपीसीआइएल के साथ 2009 में एक एमओयू पर हस्ताक्षर किया था, लेकिन अभी भी निर्माण कार्य शुरू होना शेष है। इस संदर्भ में भारत के लिए बेहतर विकल्प यही होगा कि वैश्विक यूरेनियम बाजार में वह नए सिरे से पहुंच बनाने की कोशिश करे और अपने स्वदेशी कार्यक्रमों को तेज करे। ❑

शहीद बाबू गेनू

शहीद बाबू गेनू सईद एक ऐसा दीवाना था जो महात्मा गांधी जी के आह्वान पर आत्माहुति के लिए भी तैयार था। कांग्रेस पार्टी को चार आने देने वाला यह एक सामान्य सदस्य था – बाबू गेनू। जिसका पंजीयन क्रमांक था – 8194। देश के अनेक मजदूरों में से एक सामान्य मजदूर। 'स्वदेशी और बहिष्कार' के आंदोलन ने उसे झकझोर कर रख दिया था। परिणामस्वरूप वह इस आंदोलन में सक्रिय था। 'स्वदेशी और बहिष्कार' के राष्ट्रव्यापी सत्याग्रह में वह भी सहयोगी बना। 12 दिसम्बर, 1930 को सुबह 11 बजे मुंबई के न्यू हनुमान रोड पर विदेशी कपड़ों से भरी हुई लॉरी के सामने वह लेट गया। अंग्रेज सार्जेंट ने लॉरी उसके सिर के ऊपर से गुजार दी। जिंदगी की अंतिम सांसे गिनते हुए और डॉक्टरों की लाख कोशिश के बाद भी शाम 4.40 बजे बाबू गेनू मृत्यु हो गई। शहीद बाबू गेनू का हरेक वर्ष 12 दिसम्बर को राष्ट्रभक्त नागरिकों को स्मरण करना चाहिए। स्वदेशी का स्वीकार एवं विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार' बाबू गेनू को दी जाने वाली सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

रपट

सुख का आधार स्वावलम्बन है इसके बिना किसी समृद्ध राष्ट्र की परिकल्पना नहीं की जा सकती : त्रिपाठी

पाँच वर्ष बाद क्या हमारे देश की कम्पनियों पर हमारा नियंत्रण होगा या विदेशी शक्तियों का? यदि विदेशी नियंत्रण में हमारा उत्पाद तंत्र गया तो यह हमारी राजनीति और सामाजिक तंत्र को भी प्रभावित करेगा साथ ही हमारा शोध व विकास का कार्य भी प्रभावित होगा।

– प्रो. भगवती प्रकाश शर्मा

बीते नवंबर माह 22 तारीख को स्वदेशी जागरण मंच महानगर इकाई (इलाहाबाद) द्वारा इलाहाबाद विश्वविद्यालय अतिथि गृह के सभागार में एक संगोष्ठी का आयोजन किया गया। जिसका विषय था *'नव उदारवादी आर्थिक नीतियाँ और भारत'*। संगोष्ठी का शुभारंभ भारत माता के चित्र पर पुष्प अर्पित कर व दीप प्रज्जवलित करके मुख्य अतिथि मंच के राष्ट्रीय सहसंयोजक प्रो. भगवती प्रकाश शर्मा जी ने किया। संगोष्ठी की अध्यक्षता इलाहाबाद विश्वविद्यालय अर्थशास्त्र विभाग के प्रो. गिरीश चन्द्र त्रिपाठी ने, संचालन महानगर संयोजक डॉ. सुरेश नारायण शुक्ल तथा धन्यवाद ज्ञापन प्रचार प्रमुख कैप्टन मुकेश सिंह ने किया।

मुख्य अतिथि भगवती प्रकाश शर्मा ने नवउदारवार को देश की आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था के लिए खतरा बताते हुए 1991 की तत्कालीन केन्द्र सरकार पर आरोप लगाया कि 1991 में आर्थिक विषमताओं से जूझ रहे देश में विदेशी शक्तियों के दबाव में आर्थिक संकट का समाधान पाने के लिए नवउदारवादी आर्थिक नीतियों को लागू किया गया। देश की 43 महत्वपूर्ण कम्पनियों मे एफ. डी.आई. को प्रवेश दिया गया। उन्होंने कहा कि विदेशों में बन्द हो रही कम्पनियों को आर्थिक संकट से उबारने के लिए भारतीय बाजारों को खोल दिया गया आयात कर पर छूट देकर देश के राजस्व को भारी नुकसान पहुँचाया गया इतना ही नही 1991 से लेकर अबतक हमारी सरकारों की गलत आर्थिक नीतियों एवं कानूनो के कारण एक–एक करके हमारे उद्योग व सर्विस सेक्टर विदेशी नियंत्रण में चले जा रहे हैं।

उन्होंने सवाल किया कि 5 वर्ष बाद क्या हमारे देश की कम्पनियों पर हमारा नियंत्रण होगा या विदेशी शक्तियों का? यदि विदेशी नियंत्रण में हमारा उत्पाद तंत्र गया तो यह हमारी राजनीति और सामाजिक तंत्र को भी प्रभावित करेगा साथ ही हमारा शोध व विकास का कार्य भी प्रभावित होगा।

कार्यक्रम की अध्यक्षता करते हुए प्रो. गिरीश चन्द्र त्रिपाठी ने कहा कि आज जीवन के सभी मूलभूत उत्पाद विदेशी नियंत्रण में हैं ये कम्पनियां हमारे सामाजिक व्यवस्थाओं पर भी कुठाराघात कर रही हैं। सुख का आधार स्वावलम्बन है इसके बिना किसी समृद्ध राष्ट्र की परिकल्पना नहीं की जा सकती स्वदेशी उत्पादन का नहीं उपभोग का विचार है।

संगठन के विषय में डॉ. यशोवर्धन ने विस्तार से जानकारी देते हुए स्वदेशी जागरण मंच के स्थापनाकाल से लेकर अबतक की यात्रा पर प्रकाश डाला।

मंच के काशीप्रांत संगठन मंत्री अजय जी ने संगोष्ठी की प्रस्ताविकी रखी। उन्होंने कहा कि नवउदारवाद के नाम पर हमारे मौलिक जरूरतों पर कर लगाया जा रहा है लघु कुटीर उद्योगों को बढ़ावा देकर ही भारत को स्वावलम्बी बनाया जा सकता है इसके लिए देश के नौजवानों को आगे आना होगा। गोष्ठी में प्रमुख रूप से इलाहाबाद फाउण्डेशन के अध्यक्ष श्री शशांक शेखर पाण्डेय, कैप्टन मुकेश सिंह, डी.पी. त्रिपाठी, योगेश मिश्र, विकास तिवारी दीपचन्द्र पटेल, दिनेश तिवारी, सौरभ मालवीय, मृत्युंजय तिवारी, अखिलेश पाण्डेय, राकेश शर्मा, राजेश शर्मा, पवन उपाध्याय, अनंत पाण्डेय, जया गुप्ता, श्रीमती आदर्श त्रिपाठी, इत्यादि और अनेक कार्यकर्ता शामिल रहे। ❑